Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY -119 N

भारत का सांस्कृतिक इतिहास
(1206 ई0–1947 ई0)

खण्ड प्रथम – मध्य एवं आधुनिक भारतीय साहित्य **209**

इकाई– 1 – मध्यकालीन भारत में फारसी साहित्य **211**

इकाई– 2 – सल्तनत एवं मुगल काल में गैर फारसी साहित्य एवं क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य **219**

इकाई– 3 – मध्यकालीन भारत में हिन्दी साहित्य (अरबी, तुर्की, उर्दू, संस्कृत एवं क्षेत्रीय भाषओं का साहित्य) **229**

इकाई– 4 – सूफी एवं भाक्ति साहित्य **238**

इकाई– 5 – मध्यकालीन प्रमुख हिन्दी कवि **246**

खण्ड द्वितीय – 19वी शताब्दी में सामाजिक सुधार **257**

इकाई– 1 – ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाजल्ल, आर्य समाज **259**

इकाई– 2 – रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल सोसाइटी, राधास्वामी सत्संग **272**

इकाई– 3 – मुस्लिम सुधार आन्दोलन (देवबन्ध, अलीगढ़– सर सैय्यद एवं इकबाल के विशेष संदर्भ में) **281**

इकाई– 4 – प्रमुख समाज सुधारक **290**

इकाई– 5 – मध्यम वर्ग एवं महिलाओं का उदय **304**

खण्ड तृतीयृ – नई सामाजिक शक्तियों का विकास **315**

इकाई– 1 – दलित आन्दोलन **317**

इकाई– 2 – अन्य पिछड़े वर्गो एवं जातियों का आन्दोलन **332**

इकाई– 3 – आदिवासी आन्दोलन **344**

इकाई– 4 – माहिला आन्दोलन **357**

इकाई– 5 – सामाजिक न्याय एवं प्रातिनिधित्व **369**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

भारत का सांस्कृतिक इतिहास (1206 ई.–1947 ई.)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड एवं इकाई	सम्पादक
डॉ.ऋषभ कुमार, सहायक आचार्य, इतिहास जी.डी.बिन्नानी पी.जी.कालेज,मिर्जापुर	प्रथम खण्ड 1,2,3,4,5 षष्टम खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.सन्तोषा कुमार आचार्य,इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ.समन जेहरा जैदी सहायक आचार्य, इतिहास जी.एफ.कालेज,शाहजहाँपुर	द्वितीय खण्ड 1,2,3,4,5 तृतीय खण्ड 1,2,3,4,5 पंचम खण्ड 1,2,3,4,5	
डॉ.राम कुमार यादव, सह आचार्य, इतिहास, राजकीय पी.जी.कालेज,सांगीपुर, ,जौनपुर	चतुर्थ खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.अरूप चक्रवर्ती आचार्य (से.नि.)इतिहास विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

मई, 2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN - 978-93-94487-56-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–281003

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY -119 N

भारत का सांस्कृतिक इतिहास
(1206 ई0–1947 ई0)

खण्ड

प्रथम – मध्य एवं आधुनिक भारतीय साहित्य

इकाई- 1 – मध्यकालीन भारत में फारसी साहित्य **211**

इकाई- 2 – सल्तनत एवं मुगल काल में गैर फारसी साहित्य एवं क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य **219**

इकाई- 3 – मध्यकालीन भारत में हिन्दी साहित्य (अरबी, तुर्की, उर्दू, संस्कृत एवं क्षेत्रीय भाषओं का साहित्य) **229**

इकाई- 4 – सूफी एवं भाक्ति साहित्य **238**

इकाई- 5 – मध्यकालीन प्रमुख हिन्दी कवि **246**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

भारत का सांस्कृतिक इतिहास (1206 ई.–1947 ई.)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड एवं इकाई	सम्पादक
डॉ.ऋषभ कुमार, सहायक आचार्य, इतिहास जी.डी.बिन्नानी पी.जी.कालेज,मिर्जापुर	प्रथम खण्ड 1,2,3,4,5 षष्टम खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.सन्तोषा कुमार आचार्य,इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ.समन जेहरा जैदी सहायक आचार्य, इतिहास जी.एफ.कालेज,शाहजहाँपुर	द्वितीय खण्ड 1,2,3,4,5 तृतीय खण्ड 1,2,3,4,5 पंचम खण्ड 1,2,3,4,5	
डॉ.राम कुमार यादव, सह आचार्य, इतिहास, राजकीय पी.जी.कालेज,सांगीपुर, ,जौनपुर	चतुर्थ खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.अरूप चक्रवर्ती आचार्य (से.नि.)इतिहास विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

मई, 2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN - 978-93-94487-56-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–281003

इकाई प्रथम – मध्यकालीन भारत में फारसी साहित्य

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्‌देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मध्य कालीन फारसी साहित्य

1.2.1 सल्तनत कालीन फारसी साहित्य

1.2.2 मुग़ल कालीन फारसी साहित्य

1.3 सारांश

1.4 महत्वपूर्ण बिन्दु

1.5 शब्दवाली

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्‌देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारतीय साहित्य में फारसी विद्वानों के योगदान के बारे में जान सकेंगे;
- मध्यकालीन शिक्षा पर फारसी साहित्य के प्रभाव के बारे में जान सकेंगे ;
- फारसी में अनुवादित ग्रन्थों के बारे में जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना :

11वीं सदी में तुर्कों के आगमन के साथ फारसी साहित्य का प्रचलन हुआ तथा अनेक लेखकों व कवियों ने अपनी लेखनी का आधार फारसी भाषा को बनाया, तुर्की शासकों ने फारसी को साहित्य और प्रशासन की भाषा स्वीकार किया। इस समय फिरदौसी एवं बाद के समय में अमीर खुसरों फारसी भाषा के विद्वान थे अनेक शासकों ने भी फारसी भाषा में रचनाएँ लिखीं। अनुवाद विभाग की स्थापना मुगलकाल में हुई जिससे फारसी साहित्य की अच्छी प्रगति हुई। फारसी को राजभाषा घोषित किया गया।

अनेक फारसी विद्वानों को राजदरबार में संरक्षण प्रदान किया गया। रामायण महाभारत जैसे भारतीय ग्रन्थों के साथ, बाबर की आत्मकथा जैसे ग्रन्थों का भी फारसी में अनुवाद कराया गया। फारसी कविता के क्षेत्र में भी काफी प्रगति हुई। फैजी, गिलाजी और उर्फी फारसी के प्रमुख कवि थे।

1.2 मध्य कालीन फारसी साहित्य

1.2.1 सल्तनत कालीन फारसी साहित्य

तुर्की सुल्तान फारसी साहित्य में रूचि रखते थे। दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने भी विभिन्न विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान करके फारसी साहित्य की प्रगति में योगदान दिया। अमीर खुसरों को फारसी के श्रेष्ठतम कवियों में स्थान प्राप्त था जिसके प्रमुख ग्रन्थ 'खजाइन–उल–फुतूह', 'तुगलकनामा' और 'तारीखे अलाई' माने गये हैं मुहम्मद तुगलक के समय में बदरूद्दीन मुहम्मद फारसी का श्रेष्ठ कवि था। फिरोज़ तुगलक ने स्वयं की आत्मकथा लिखी थी तथा इतिहासकार बरनी और अफीक उसके संरक्षण में थे। लोदी शासकों ने भी विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया और सिकन्दर लोदी स्वयं कविता लिखता था।

इतिहासकारों में **'ताज–उल–मासिर'** का लेखक हसन निजामी, **'तबकात–ए–नासिरी,** का लेखक मिनहाजुद्दीन सिराज, **'तारीखे फिरोजशाही'** और **'फतवा–ए–जहाँदारी,** का लेखक जियाउद्दीन बरनी, **'तारीखे फिरोजशाही'** का लेखक शम्स–ए–सिराज अफीक, **'तारीखे मुबारक शाही',** का लेखक याहिया बिन अहमद सरहिन्दी और **'फतूह–उस–सलातीन'** का लेखक ख्वाजा अबूमलिक इसामी मुख्य माने गये हैं जिनके बारे में संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित हैं :

(i) **ताज–उल–मासिर** फारसी भाषा का प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसका रचयिता मुहम्मद हसन निज़ामी था। इस ग्रन्थ का अंग्रेज़ी में अनुवाद इलियट और डाउसन ने अपनी पुस्तक **'भारत के इतिहासकारों द्वारा लिखित भारत का इतिहास'** के द्वितीय भाग में किया। हसन निज़ामी ने इस ग्रन्थ की रचना 1205 ई0 में की इसमें उसने भारत में हुई 1191 ई0 से 1217 ई0 तक की घटनाओं का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में मुख्यतया ऐबक, गौरी तथा इल्तुमिश के समय की घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत भारतीय राजनीति, समाज, धर्म और संस्कृति पर अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है।

(i) फारसी भाषा का एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ **'तबकात–ए–नासिरी'** है जिसका लेखक मिनहाजुद्दीन सिराज था। इलियट और डाउनसन ने अपनी पुस्तक **'भारत के इतिहासकारों द्वारा लिखित भारत का इतिहास'** के द्वितीय भाग में अंग्रेज़ी में इसका अनुवाद किया है।

तबकात–ए–नासिरी एक विस्तृत ग्रन्थ है जिसमें न केवल गुलामवंश के शासकों के समय की घटनाओं का वर्णन है अपितु इस्लाम के आरम्भ, विभिन्न खलीफा ईरानी बादशाहों, प्रारम्भिक तुर्को, गजनबी और गौर–वंशों, इस्लामी राज्यों पर हुए मंगोल आक्रमणों आदि का भी विशद वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ की लेखन–शैली सरल, स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण है।

(i) अमीर खुसरों भी फारसी भाषा का विद्वान था जिसका जन्म उत्तर प्रदेश के पटियाली गाँव में 1253 ई0 में हुआ था उसने सुल्तान बल्बन के समय को देखा और उसके पश्चात् कैकुबाद, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक का संरक्षण प्राप्त किया। अपने समय में वह एक महान विद्वान स्वीकार किया गया है। **डॉ0 मेहदी हुसेन ने उसके विषय में लिखा है,** 'अमीर खुसरों एक जन्मजात कवि के साथ–साथ एक सैनिक, योद्धा और यात्री था उसने भारत के दूरस्थ प्रदेशों का भ्रमण किया था वह सेनाओं के साथ–साथ दक्षिण में देवगीरि पूर्व में लखनौती और पश्चिम में मुल्तान तक गया था।'

अमीर खुसरों ने अनेक रचनाओं को लिखा जिसमें किरान–उस–सादेन, मिफताह–उल–फतूह, नूह सिपेहर, आशिका और तुगलकनामा महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इसके अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण किताब **'खजाइन–उल–फतूह' अथवा 'तारीखे अलाई'** है इसमें अलाउद्दीन के प्रथम 16 वर्ष की घटनाओं का वर्णन किया गया।

(iv) **'तारीख–ए–फिरोजशाही'** भी फारसी भाषा की एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसका लेखक ज़ियाउद्दीन बरनी है। बरनी ने इस ग्रन्थ की रचना 1358 ई0 के लगभग की। उसने इस ग्रन्थ को वहाँ से आरम्भ किया जहाँ 'तबकात–ए–नासिरी' समाप्त होता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सुल्तान बलबन के सिंहासन पर बैठने के समय से आरम्भ किया गया है इस प्रकार यह बलबन, खिलजी वंश और तुलगक वंश के इतिहास को जानने का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

(v) **तारीख–ए–फिरोज शाही'** नामक पुस्तक एक अन्य लेखक शम्स–ए–सिराज की भी है उसने भी अपनी पुस्तक का नाम वही रखा जो बरनी ने रखा था। इस पुस्तक में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के शासन की सभी घटनाओं का आरम्भ से अन्त तक विस्तृत वर्णन किया गया है।

(vi) सुल्तान फिरोजशाह द्वारा लिखित 32 पृष्ठों की आत्मकथा **'फतूहात–ए–फिरोजशाह'** का फारसी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। **'फतूहात–ए–फिरोजीशाही'** का शब्दिक अर्थ है फिरोज की विजये, परन्तु इसमें फिरोजशाह की साम्राज्य विस्तार की नीति का वर्णन नहीं है अपितु उसके अन्य कार्यों का वर्णन है जो उसने इस्लाम धर्म के विस्तार के लिए अपनाए थे। इस कारण इसमें मूलतः यह लिखा गया है कि सुल्तान ने केवल इस्लाम द्वारा स्वीकृत करो को ही लिया, हिन्दुओं मुख्यतः ब्राह्मणों से भी जजिया लिया, इस्लाम द्वारा वर्जित कार्यों को करने से अपनी प्रजा को रोका।

(vii) इसामी द्वारा रचित **'फुतूह–उस–सलातीन'** का भी फारसी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसामी मुहम्मद तुगलक का समकालीन था। इसामी का यह ग्रन्थ विस्तृत ग्रन्थ है और इसमें उसने जो कुछ लिखा है वह अपनी आँखों से देखा हुआ मात्र नहीं लिखा अपितु उसने उसे लिखने में अन्य ग्रन्थों की भी सहायता ली है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि सल्तनत काल में अनेक विद्वानों ने फारसी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने जो रचनाएँ लिखी उनके द्वारा सल्तनत कालीन इतिहास जानने में काफी मदद मिलती है।

1.2.2 मुगल कालीन फारसी साहित्य

मुगलकाल में फारसी साहित्य की अच्छी प्रगति हुई। सभी मुगल बादशाह (अकबर के अतिरिक्त) साक्षर थे और सभी ने साहित्यक प्रगति में अपना योगदान दिया। मुगल राज्य का संस्थापक बाबर एक विद्वान शासक था और उसके दरबार में सभी विद्वानों का आदर किया जाता था। अपनी आत्मकथा **'तुजुक–ए–बाबरी' अथवा 'बाबरनामा'** उसने तुर्को में लिखी थी और वह इतनी श्रेष्ठ मानी गयी कि तीन बार उसका फारसी में अनुवाद किया गया और विभिन्न यूरोपियन भाषाओं में भी उसका अनुवाद हुआ। बाबर तुर्की और फारसी में कविता करता था। उसका कविता संग्रह **'दीवान'** (तुर्की में) बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसने फारसी लेखन शैली में **'खत–ए–बाबरी'**

नामक एक नवीन शैली को जन्म दिया था। उसने एक नवीन काव्य शैली **'मुबईयान'** को प्रारम्भ किया। हुमायूं तुर्की तथा फारसी साहित्य का ही अच्छा ज्ञाता नहीं था बल्कि उसे दर्शन, गणित और नक्षत्र का भी ज्ञान था उसने विभिन्न विद्वानों को अपने दरबार में संरक्षण प्रदान किया। अकबर स्वयं शिक्षित नहीं था परन्तु उसने अपनी उदारता से उस वातावरण को स्थापित किया जिससे उसके समय में साहित्यिक प्रगति सबसे अधिक हुई। अबुल फजल अकबर के दरबार के 59 श्रेष्ठ कवियों का उल्लेख करता है। उसने फारसी भाषा को राजभाषा बनाया और संस्कृत, तुर्की, यूनानी आदि भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकों का अनुवाद कराने के लिए एक अनुवाद विभाग की स्थापना की उसके समय में अनेक विद्वानों को राज्य का संरक्षण प्राप्त था। जहाँगीर स्वयं शिक्षित विद्वान और आलोचक था उसने अपने शासनकाल के 17वें वर्ष तक अपनी आत्मकथा **'तुजुक–ए–जहाँगीरी'** को लिखा यद्यपि उसके पश्चात् यह कार्य उसने मोतामिद खाँ को सौंप दिया जहाँगीर के समय में दरबार में विद्वानों का सम्मान था जिन्होंने मूल पुस्तकों की रचना की। जहाँगीर के काल में अनुवाद का कार्य इतना अच्छा नहीं हुआ जितना अकबर के समय में। शाहजहाँ के समय में भी अनेक विद्वान हुए। उसके पुत्र दाराशिकोह के प्रयत्नों के कारण संस्कृत के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया। औरंग़जेब स्चयं विद्वान था उसके समय में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी। उत्तरकालीन, मुगल बादशाहों के समय में मुहम्मदशाह के समय तक फारसी राजभाषा बनी रही परन्तु उसके पश्चात् उसका स्थान उर्दू ने ले लिया। परन्तु तब भी बाद के समय में भी अनेक पुस्तकें फारसी में लिखी जाती रहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण मुगलकाल में फारसी साहित्य को राज्य का संरक्षण प्राप्त होता रहा और उसकी प्रगति होती रही।

फारसी साहित्य में आत्मकथाओं और ऐतिहासिक पुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान है। बाबर की आत्मकथा **'तुजुक–ए–बाबरी',** अबुलफजल का **'अकबरनामा'** और **'आइने अकबरी'**, निजामुद्दीन अहमद का **'तबकात–ए–अकबरी'**, गुलबदन बेगम का **'हुमायूँनामा',** जौहर का **'तजकीरात–उल–वाकियात'** तथा अब्बास सरवानी का **'तारीख–ए–शेरशाही'** जो विभिन्न विद्वानों के प्रयत्न से लिखा गया था, इनमें महत्वपूर्ण हैं। 1,000 वर्षों का इस्लाम का इतिहास बनाम् **'तारीख–ए–अलफी'**, बदायूँनी का **'मुन्तखब–उत–तवारीख'**, अहमद यादगार का **'तारीख–ए–सलातीने अफगान'**, आदि इतिहास की वे रचनाएँ हैं जो अकबर के समय में लिखी गयी (बाबरनामा को छोड़कर)। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा **'तुजुक–ए–जहाँगीरी'** को लिखा और उसी के समय में मोतमिद खाँ ने उसकी अधूरी आत्मकथा को पूरा किया। मोतमिद खाँ ने

'इकबालनामा–ए–जहाँगीरी' की रचना भी की। इसके अतिरिक्त ख्वाजा कामगार ने **'मआसिर–ए–जहाँगीर'**, मुहम्मद कासिम फरिश्ता ने **'तारीख–ए–फरिश्ता'** और मुल्ला नहबन्दी ने **'मअस्सर–ए–रहीम'** को लिखा। शाहजहाँ के समय में अब्दुल हमीद लाहौरी का **'पादशाहनामा'** इनायत खाँ का **'शाहजहाँनामा'** और मुहम्मद सालेह का 'अमल–ए–सालेह' प्रमुख है। औरंगजेब इतिहास की पुस्तकों में विश्वास नहीं था परन्तु तब भी विद्वानों ने उसके समय में कुछ श्रेष्ठ पुस्तकों की रचना की। उनमें खाफी खाँ की **'मुतखब–उल–लुबाब'**, मिर्जा मुहम्मद कासिम शिराज़ी की **'आलमगीरनामा'**, ईश्वरदास नागर का **'फुतुहात–ए–आलमगीरी'** प्रमुख है। उत्तर कालीन मुगल बादशाहों के समय में भी अनेक ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी गयीं। इनमें से कुछ की रचना मुगल दरबार के विद्वानों ने की और अधिकांश की रचना विभिन्न प्रान्तीय स्वतंत्र दरबारों के संरक्षण में रहने वाले विद्वानों ने की। इनमें से प्रमुख गुलाम हुसेन की 'सिदरूल तखारीन', मुहम्मद अली की **'तवारीख–ए–मुजफ्फरी'**, हरीचरनदास की **'तवारीख चहार गुलज़ार–ए–शुजाई'** आदि प्रमुख हैं।

फारसी में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य अन्य विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया जाना था। संस्कृत की पुस्तकों में से महाभारत का अनुवाद नकीब खाँ बदायूँनी, अबुलफजल, फैजी आदि विभिन्न विद्वानों के सम्मिलित प्रयासों से किया गया। उसने 'अर्द्धवेद' का अनुवाद आरम्भ किया और उसकी पूर्ति हाजी इब्राहिम सरहिन्दी ने की। लीलावती का अनुवाद फैजी ने किया। राजतरंगिणी का अनुवाद शाह मुहम्मद शाहाबादी ने किया। इसके अलावा शाहजहाँ के समय में उसके पुत्र दाराशिकोह के प्रोत्साहन से इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया गया उसने उपनिषदों, भगवत् गीता, योगवाशिष्ठ का अनुवाद फारसी भाषा में कराया। स्वयं दाराशिकोह ने एक मौलिक पुस्तक मजमा–उल–बहरीन (दो समुद्रों का मिलन) को लिखा जिसमें उसमें हिन्दू और इस्लाम धर्मों को एक ईश्वर की प्राप्ति के दो मार्ग बताया। इसके अलावा अरबी, तुर्की और ग्रीक भाषाओं के बहुत से ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया। बाइबल का अनुवाद किया गया और कुरान की बहुत सी टीकाओ का फारसी में अनुवाद किया गया। औरंगजेब ने अरबी के बहुत से ग्रन्थों की सहायता से फारसी में एक न्याय की पुस्तक **'फतवा–ए–आलमगीरी'** की रचना कराई।

जहाँगीर और नूरजहाँ को भी कविता करने का शौक था। शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा और औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा भी प्रसिद्ध कवित्रियाँ थीं। अधिकांश कविताओं का विषय प्रेम था और गजल, रूबाइयों आदि के रूप में तैयार की गयी थी।

1.3 सारांश

मध्यकाल में फारसी साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। सल्तनत काल से मुगलकाल तक सभी बादशाहों ने फारसी साहित्य के विकास में योगदान दिया। उन्होंने फारसी के विद्वानों को अपने दरबार में संरक्षण प्रदान किया तथा अनेक भारतीय और विदेशी भाषाओं के ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया। अकबर के समय में फैजी के नेतृत्व में अनुवाद विभाग की स्थापना की गयी जिसका मुखिया फैजी को बनाया गया। मुगलकाल में फारसी राजभाषा थी तथा फारसी के माध्यम से ही बादशाह पत्र भेजा करते थे। भारतीयों को भी फारसी साहित्य के माध्यम से फारसी भाषा सीखने का अवसर मिला तथा वे फारसी साहित्य से परिचित हो सके। मध्यकालीन बादशाहों ने फारसी भाषा के माध्यम से ही ईरान, इराक जैसे मध्य एशियाई देशों के साथ अपने सम्बन्धों को स्थापित किया था।

1.4 महत्वपूर्ण बिन्दु

- 10वीं सदी में तुर्कों के भारत आगमन के साथ फारसी भाषा का प्रचलन हुआ।
- तुर्कों ने आरम्भ से ही इस देश में साहित्य और प्रशासन की भाषा के रूप में फारसी को अपनाया।
- अमीर खुसरों फारसी भाषा का प्रमुख विद्वान था।
- जियाउद्दीन बरनी, अफीक और इसामी इस काल के प्रसिद्ध इतिहासकार थे।
- फारसी के माध्यम से भारत ने मध्य एशिया तथा ईरान के साथ घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किए।
- अकबर ने अपने राजकवि फैजी के आधीन एक अनुवाद विभाग की स्थापना की।
- बदायूँनी ने 1589 ई0 में **रामायण** का अनुवाद फारसी भाषा में किया।
- टोडरमल ने **भागवत पुराण** का फारसी में अनुवाद किया।
- हाजी इब्राहिम ने **अथर्वेद** का फारसी भाषा में अनुवाद किया।
- हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम ने फारसी भाषा में **'हुमायूँनामा'** की रचना की।
- बाबर ने फारसी लेखन शैली में एक नवीन शैली खत–ए–बाबरी को जन्म दिया।

1.5 शब्दावली

1. खलीफ़ा–अरबी भाषा में ऐसे शासक को कहते हैं जो किसी इस्लामी राज्य या अन्य शरिया (इस्लामी कानून) से चलने वाली राजकीय व्यवस्था का शासक हो।
2. मुबईयान–पद्शैली जिसका जन्मदाता बाबर को माना जाता है।

3. खत–ए–बाबरी–बाबर ने फारसी लेखन में एक नवीन शैली (लिपि) की शुरूआत की।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनतकालीन फारसी ग्रन्थों का वर्णन कीजिए।
2. मुगलकाल के फारसी ग्रन्थों का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बरनी द्वारा रचित तारीख–ए–फिरोज़शाही पर एक लेख लिखिए।
2. अमीर खुसरों की रचनाओं पर प्रकाश डालिए।
3. बाबर की आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी (बाबरनामा) का मूल्यांकन कीजिए।
4. अकबर के काल के फारसी ग्रन्थों का वर्णन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मिन्हास–उल–सिराज द्वारा लिखित ग्रन्थों का नाम था –

   (अ) तारीख–ए–फिरोज़शाही (ब) तबक़ात–ए–नासिरी (स) तारीख–ए–मुबारकशाही

   (द) इनमें से कोई नहीं

2. बरनी द्वारा लिखित ग्रन्थ का नाम था –

(अ) शाहनामा (ब) खज़ाइनुत फुतूह (स) तारीख–ए–फिरोज़शाही

(द) तारीख–ए–सतातीन–ए–अफ़ग़ान

3. अकबरनामा का लेखक था –

(अ) अकबर (ब) हुमायूँ (स) फैज़ी (द) अबुल फज़ल

4. इनमें से कौन सा ग्रन्थ आत्मकथा है –

(अ) तारीख–ए–फिरोज़शाही (ब) अकबरनामा (स) तुजुक–ए–जहाँगीरी (द) हुमायूँनामा

5. निम्न में से कौन सा ग्रन्थ अकरबरकालीन नहीं है –

(अ) तबक़ात–ए–अकबरी (ब) मुन्तखन–उल–तारीख (स) अकबरनामा

(द) आलमगीरनामा

उत्तर – 1–ब, 2–स, 3–द, 4–स, 5–द

इकाई द्वितीय–सल्तनत एवं मुगलकाल में गैर–फारसी साहित्य एवं क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य

इकाई की रूपरेखा :

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 गैर फारसी साहित्य

2.2.1 हिन्दी साहित्य

2.2.2 अरबी साहित्य

2.2.3 उर्दू साहित्य

2.2.4 संस्कृत

2.3 क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य

2.3.1 पंजाबी साहित्य

2.3.2 बंगाली साहित्य

2.3.3 असमी साहित्य

2.3.4 उड़िया साहित्य

2.3.5 मराठी साहित्य

2.3.6 गुजराती साहित्य

2.3.7 तमिल साहित्य

2.3.8 तेलगू साहित्य

2.3.9 कन्नड़ साहित्य

2.3.10 मलयालम साहित्य

2.4 सारांश

2.5 महत्वपूर्ण बिन्दु

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- गैर फारसी साहित्य के विकास के बारे में जान सकेंगे;
- क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य के विकास के बारे में जान सकेंगे;
- उर्दू भाषा की उत्पत्ति और विकास के बारे में जान सकेंगे;
- प्रादेशिक भाषाओं, विकास के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों के बारे में जान सकेंगे;

2.1 प्रस्तावना

सल्तनत काल एवं मुगलकाल साहित्य के समृद्ध रूप से फलने–फूलने का युग रहा है। यह वह युग था जब संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में असाधारण प्रगति के साथ–साथ नई भाषाओं का प्रयोग आरम्भ हुआ। इन नई भाषाओं में अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं की रचना की गयी तथा अनेक पुस्तकों का भी इन भाषाओं में अनुवाद हुआ।

2.2 गैर फारसी साहित्य

सल्तनत काल एवं मुगलकाल में गैर फारसी साहित्य निम्नलिखित हैंः

2.2.1 हिन्दी साहित्य

सूफी सन्तों और विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मध्यकाल में हिन्दी की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना **'पृथ्वीराजरासो'** दिल्ली के अन्तिम राजपूत नरेश पृथ्वीराज के मंत्री चन्दबरदायी ने की। इसके अलावा दूसरी प्रसिद्ध रचना **'आल्हाखण्ड'** है जिसे जगनिक ने लिखा था। अन्य वीर–काव्यों में

बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो, खुमान रासो आदि हैं। सूफी कवियों ने इस्लामी रहस्यवाद तथा भारतीय प्रेम कथाओं, लोकप्रिय दन्त–कथाओं और कहानियों को मिलाकर रचनाएँ की। मुल्ला दाऊद की **'चन्दायन'** ऐसी काव्य रचनाओं में से सबसे पहली है। कुतुबुन की **'मृगावती'** तथा मलिक मोहम्मद जायसी का **'पदमावत'** प्रमुख रचनाएँ हैं। भक्ति कवियों में कबीर की 'बीजक' सूरदास की **'सूरसागर'**, तुलसीदास की **'रामचरितमानस'** प्रमुख रचनाएँ हैं।

2.2.2 अरबी साहित्य

मुसलमानों द्वारा सर्वाधिक साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ अरबी में रचे गये जो पैगम्बर की भाषा थी और जिसे स्पेन से लेकर बगदाद तक साहित्य और विज्ञान की भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता था लेकिन जो तुर्क भारत आये वो फारसी भाषा से बहुत अधिक प्रभावित थे जो मध्य एशिया में दसवीं शताब्दी में ही साहित्य और प्रशासन की भाषा थी। भारत में अरबी का प्रयोग अधिकतर इस्लामी विद्वानों विधिशास्त्रियों और दर्शनिकों द्वारा एक छोटे से हिस्से तक सीमित रहा और इन विषयों पर अधिक मौलिक साहित्य अरबी में रचा गया।

अलबरूनी अरबी भाषा का प्रसिद्ध विद्वान था जो महमूद गजनवी के आक्रमण के साथ भारत आया। उसने अरबी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तक **'तहकीक–ए–हिन्द'** लिखी। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमें 80 अध्याय हैं, इसमें अलबरूनी ने भारत की प्राकृतिक परिस्थितियों के बारे में लिखा है। इसके अलावा रीति–रिवाजों, समाजिक परम्पराओं धार्मिक दर्शन और मान्यताओं पर प्रकाश डाला है।

2.2.3 उर्दू साहित्य

उर्दू शब्द की उत्पत्ति तुर्की भाषा से हुई और इसका शब्दिक अर्थ सेना अथवा कैम्प है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में उर्दू का प्रयोग एक काम चलाऊ भाषा के रूप में फारसी बोलने वाले तुर्क शासक वर्ग और सैनिकों द्वारा स्थानीय लोगों जिनमें हाल ही में इस्लाम स्वीकार करने वाले भी थे के साथ सम्पर्क से हुआ। तथापि इसने अभी तक साहित्यिक भाषा का रूप प्राप्त नहीं किया था इस नयी भाषा को एक मूर्त रूप प्राप्त करने में एक शताब्दी समय लगा और इसे अमीर खुसरों ने **'हिन्दवी'** नाम दिया। खुसरों ने अपने छन्दों की रचना हिंदवी में की और इस प्रकार उर्दू साहित्य की नींव रखी। उर्दू की रचनाओं में गेसू दराज की **'मिराज–उल–आशिकी'** दक्षिणी उर्दू की प्रारम्भिक रचना है।

2.2.4 संस्कृत साहित्य

मध्यकाल में संस्कृत साहित्य को हिन्दू शासकों से संरक्षण प्राप्त था मुख्यतया विजयनगर, वारंगल और गुजरात के शासकों से। इस समय संस्कृत में काव्य, नाटक, टीकाएँ आदि सभी कुछ लिखा गया। रचनाओं की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में आभाव न रहा परन्तु इस युग के ग्रन्थों में मौलिकता का आभाव रहा। हमीरदेव, कुम्भकर्ण, प्रतारूद्रदेव, बसन्तराज, काव्यमेव, विरूपाक्ष, नरसिंह, कृष्णदेवराय आदि ऐसे शासक हुए जिन्होंने संस्कृत साहित्य का पोषण किया। प्रतापरूद्रदेव के दरबार के विद्वान अगस्त्य ने **'प्रतापरूद्रदेव यशोभूषण'** कृष्ण चरित्र आदि ग्रन्थों की रचना की। विद्याचक्रवर्तिन तृतीय ने वीर बल्लाल के संरक्षण में **'रूक्मिणी कल्याण'** लिखा। जैन विद्वान नयचन्द ने संस्कृत में हम्मीर काव्य लिखा। विजयनगर के सम्राट विरूपाक्ष ने स्वयं नारायण–विलास और कृष्णदेवराय ने **'जाम्ववती कल्याण'** तथा अन्य कई पुस्तकें लिखी। जयदेव ने **'गीत–गोविन्द'** जय सिंह ने **'हम्मीर मद–मर्दन'** और गंगाधर ने **'गंगादास प्रताप विलास'** लिखा। कल्हण द्वारा **'राजतरिंगणी'** में कश्मीर का इतिहास चित्रित किया गया।

मुगलकाल में संस्कृत की मौलिक रचनाओं का आभाव रहा परन्तु तब भी संस्कृत भाषा की स्थिति पहले के मुसलमानी काल से अच्छी रही अकबर ने संस्कृत के विद्वानों को सम्मान दिया। अबुल फजल ने उसके समय में अनेक विद्वानों का उल्लेख किया है। उसके समय में संस्कृत भाषा का एक कोश तैयार किया गया। दरभंगा के महेश ठाकुर ने अकबर के समय के इतिहास को संस्कृत में लिखा। जैन विद्वान सिद्धचन्द्र उपाध्याय ने **'भानुचन्द्र चरित्र'** को लिखा। शाहजहाँ के समय में जगन्नाथ पण्डित ने 'रस गंगाधर' और 'गंगा–लहरी' की रचना की। औरंगजेब ने संस्कृत को संरक्षण देना बन्द कर दिया।

2.3 क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य

मध्यकाल में क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य निम्नलिखित प्रकार हैं:

2.3.1 पंजाबी साहित्य

13वीं सदी प्रारम्भ से 16वीं सदी के प्रारम्भ के मध्य में पंजाबी साहित्य के इतिहास में दो सुस्पष्ट प्रवृतियाँ सामने आयी। एक तरफ उस युग में सूफी और भक्ति काव्य और दूसरी ओर वीर गाथाओं तथा लोक साहित्य का जोर था। प्रसिद्ध चिश्ती

सूफी बाबा फरीद (शेख फरीदुद्दीन गंजशकर (1173–1265 ई0)) द्वारा रचित सूफी काव्य रचनाओं ने पंजाबी भाषा के काव्य संसार में अग्रणी योगदान दिया। 16वीं सदी में गुरूनानक द्वारा रचित भजनों ने इस भाषा को एक उन्नत साहित्यिक रूप प्रदान किया। द्वितीय सिख गुरू अंगद द्वारा पंजाबी को एक स्पष्ट गुरूमुखी लिपि प्रदान की गयी। गुरूनानक द्वारा रचित भजनों को बाद में पांचवे सिख गुरू अर्जुन द्वारा 1604 ई0 में 'आदिग्रन्थ' में सम्मिलित किया गया। उनकी काव्य रचना की विशिष्टता भावों की शुद्धता और उनकी पद–योजना और शैली में विविधताओं में निहित है।

2.3.2 बंगाली साहित्य

10वीं 12वीं सदी के मध्य रचित 'चरयापद' नामक लोकगीत बंगाली भाषा के प्रारम्भिक नमूने कहे जा सकते हैं। 15वीं शताब्दी तक तीन प्रमुख प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। (1) वैष्णव भक्ति काव्य (2) महाकाव्यों के अनुवाद और रूपान्तरण (3) मंगल काव्य। चण्डीदास (15वीं सदी के) बंगाल के प्रथम वैष्णव भक्ति कवि थे जिन्होंने राधा और कृष्ण के प्रेम पर गीतात्मक काव्य की रचना की। बंगाल का प्रसिद्ध वैष्णव सन्त चैतन्य चण्डीदास के भक्ति गीतों की आध्यात्मिकता से प्रभावित था। चैतन्य और उनके आन्दोलन ने बंगाली में वैष्णव साहित्य को प्रोत्साहन दिया। 15वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में, कृतिवास ओझा ने बाल्मीकी की संस्कृत रामायण का बंगाली काव्य रूपान्तरण प्रस्तुत किया। मालाधर बसु ने वैष्णव संस्कृत ग्रन्थ 'भागवत पुराण' का रूपान्तरण 15वीं सदी के अन्त में बंगाली में किया जो **श्रीकृष्ण विजय** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाभारत का बंगाली में दूसरा और लोकप्रिय अनुवाद कासीराम ने किया।

2.3.3 असमी साहित्य

हेम सरस्वती असमी भाषा की प्रथम कवयित्री थीं। उसने 13वीं सदी के उत्तरार्द्ध में **'प्रह्लाद कविता'** और **'हर–गौरी सम्वाद'** की रचना की। उसके समकालीन कवि हरिहर विप्र ने अपनी कविताओं के लिए रामायण और महाभारत के प्रसंगों को आधार बनाया। 14वीं सदी के बाद कमारा और चाचर असमी साहित्य की उन्नति के केन्द्र बने 'कीर्तनघोष' को असमी भाषा की सबसे महत्वपूर्ण वैष्णव धार्मिक कृति माना जाता है। इसमें भक्ति गीतों का संग्रह था जिसमें से अधिकांश शंकरदेव द्वारा रचित थे। शंकरदेव ने कई नाटकों (अंकिया नाट) की भी रचना की जो पैराणिक कथाओं पर आधारित थे उसने एक नई शैली की रचना की जो 'वरगीत' कहलाई। शंकरदेव के

शिष्य माधवदेव ने भी कई साहित्यिक रचनाओं की रचना की और 'बरगीत' की काव्य शैली को समृद्ध बनाया।

2.3.4 उड़िया साहित्य

13वीं 14वीं सदी के दौरान उड़िया भाषा को साहित्यिक स्वरूप प्राप्त हुआ। सरलादास उड़िया का प्रथम सर्वश्रेष्ठ कवि था। उसने उड़िया में महाभारत की रचना की। जिसे उड़ीसा के लोग एक महान महाकाव्य समझते हैं। उड़िया साहित्य ने 16वीं सदी के प्रारम्भ में एक नये युग में प्रवेश किया, जब वहाँ के चैतन्य के प्रभाव के फलस्वरूप वैष्णव भक्ति आन्दोलन का प्रसार हुआ चैतन्य के कई शिष्यों ने भक्ति सम्बन्धी संस्कृत रचनाओं का उड़िया भाषा में अनुवाद या रूपान्तरण किया। चैतन्य के निकटतम सहयोगियों में से एक जगन्नाथदास था जो अपने समय के उड़िया साहित्य का प्रमुख स्तम्भ था उसके द्वारा उड़िया में **'भागवत पुराण'** का अनुवाद किया गया।

2.3.5 मराठी साहित्य

मराठी भाषा में छन्द रूप में साहित्य 13वीं सदी के दूसरे भाग से प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक मराठी साहित्य पर शैव नागपंथियों का प्रभाव रहा। दो अति प्रारम्भिक मराठी कृतियाँ **'विवके दर्पण'** और **'गोरखगीता'** मागपंथी परम्परा से सम्बन्धित थे। इस युग का सबसे प्रमुख कवि मुकुन्दराज नागपंथी परम्परा से सम्बन्धित था और उसने विशुद्ध लोकप्रिय भाषा में **'विवेक सिन्धु'** की रचना की। मराठी साहित्य की प्रारम्भिक अवस्था में दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव महानुभाव पंथ से सम्बन्धित कवियों का पड़ा, इसका उद्भव 13वीं सदी में हुआ। महानुभाव संत–कवि प्रारम्भिक मराठी भक्ति साहित्य के जनक में से थे, जिन्होंने मराठी कोश–कला, टीका, व्याकरण, छंदशास्त्र और अलंकार शास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महाराष्ट्र के वरकारी भक्ति सन्त कवियों ने मराठी भाषा में भक्ति साहित्य को और प्रचारित किया उनमें से प्रथम ज्ञानदेव (13वीं सदी) था। उसने **'भगवत् गीता'** पर एक टीका लिखी। यह 'भावार्थ दीपिका' कहलाई परन्तु इसे लोकप्रिय रूप में ज्ञानेश्वरी कहा जाने लगा। यह एक वरकारी परम्परा से सम्बन्धित महाराष्ट्रीय वैष्णव भक्ति सन्तों का आधारभूत ग्रन्थ है। वरकारी परम्परा से ही एक अन्य सन्त कवि नामदेव था उसने मराठी में बड़ी संख्या में 'अभंगा' (छोटी गीतमय कविता) की रचना की। उसने उत्तर भारत की यात्रा की और बाद में उसके पदों को सिख धर्मग्रन्थ आदि ग्रन्थ में सम्मिलित किया गया। मध्यकालीन महाराष्ट्र के दो अन्य महान् सन्त कवि एकनाथ और तुकाराम

मुगलकाल से सम्बन्धित थे। उन्होंने भी मराठी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2.3.6 गुजराती साहित्य

राजस्थानी और गुजराती दोनों भाषाओं की उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से हुई। गुजराती साहित्य के विकास का प्रथम दौर 15वीं शताब्दी के मध्य तक जारी रहा इस काल में मुख्य रूप से दो साहित्यिक शैलियाँ विकसित हुई। प्रबंध या वर्णानात्मक कविता और मुक्तक या लघु कविता। प्रथम श्रेणी में वीर–कथाएँ, प्रेम–कथाएँ और रास अथवा लम्बी कविताएँ सम्मिलित थी। उन कविताओं के विषय वस्तु में ऐतिहासिक विषय होते थे जो कथा साहित्य, लोकप्रिय दंत कथाओं और जैन मिथक साहित्य से अलंकृत होते थे मुकतकों या लघु कविता की दूसरी श्रेणी ने विभिन्न शैलियों जैसे **फागु, वारामासी** और **छापो** को अपनाया। फागु का अर्थ एक लघु गीतमय कविता से है जिसमें विरह पर ध्यान दिया जाता है। गुजराती साहित्य के इतिहास का दूसरा युग 15वीं सदी के अन्तिम वर्षों में वैष्णव भक्ति कविता के प्रसार से प्रारम्भ हुआ। नरसिंह मेहता (1414–1480 ई0) एक प्रमुख गुजराती भक्ति कवि था। उसने अपनी कविताओं द्वारा वैष्णव भक्ति को गुजरात में लोकप्रिय किया।

2.3.7 तमिल साहित्य

चोल साम्राज्य के पतन के साथ ही तमिल साहित्य का युग समाप्त हुआ। फिर भी लेखक और कवि तमिल साहित्य में अपना योगदान देते रहे। विल्लीपुत्तुरार, जिसका सम्बन्ध 13वीं सदी से था, उस समय का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक नाम था। उसने महाभारत का तमिल में अनुवाद प्रस्तुत किया जो **'भारतम्'** कहलाया और तमिल भाषी लोगों में लोकप्रिय हुआ। विल्लीपुत्तुरार का समकालीन अरूणागिरी नाथ था। उसने **'तिरूप्पगल'** की रचना की। इस युग में वैष्णव विद्वानों द्वारा विस्तृत टीका भी लिखी गयी। संगम युग की साहित्यिक कृतियों जैसे तोलकप्पियम और कुराल पर भी टीका लिखी गयी ये टीकाएँ मध्यकालीन तमिल गद्य के मॉडल हैं जो अपनी स्पष्टता और संक्षिप्त के लिए प्रसिद्ध है। एक अन्य प्रमुख लेखक कचिअप्पा शिराचार्य ने भगवान सुब्रमन्या की स्तुति में कन्द–पुराणम की रचना की।

2.3.8 तेलगू साहित्य

13वीं सदी से तेलगू साहित्य की उन्नति का दौर प्रारम्भ हुआ। 13वीं और 14वीं सदियों के दौरान संस्कृत कृतियों के तेलगू अनुवाद और रूपान्तरण प्रकाशित हुए।

14वीं सदी के प्रथम भाग का प्रमुख तेलगू कवि ऐट्टाप्रगदा था। उसने साहित्यिक लेखन की चुम्पी शैली (गद्य और पद्य की मिश्रित शैली) को प्रचलित किया। इस शैली में उसने **'रामायण'** की रचना की। उसने 'महाभारत' के एक भाग और एक अन्य वैष्णव संस्कृति कृति **'हरिवंश'** का तेलगू में अनुवाद किया। श्रीनाथ एक अन्य प्रमुख तेलगू लेखक था उसने श्रीहर्ष के 'नइसधा' काव्य का तेलगू में अनुवाद किया। तेलगू साहित्य ने विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय के शासन काल में सर्वोच्च ऊँचाईयाँ प्राप्त की जो स्वयं संस्कृत और तेलगू का कवि था उसने तेलगू में **'अमुक्तमाल्यदा'** की रचना की उसने कई तेलगू कवियों को संरक्षण प्रदान किया जिनमें से प्रमुख पेद्दना था। इसने तेलगू में मनु–चरित की रचना की।

2.3.9 कन्नड साहित्य

कन्नड़ साहित्य का प्रारम्भिक काल (12वीं सदी तक) जैन लेखकों से प्रभावित रहा। 12वीं सदी के मध्य से वीरशैववाद–एक लोकप्रिय धार्मिक आन्दोलन ने कन्नड़ भाषी क्षेत्र के साहित्य और लोगों को प्रभावित किया। वीरशैव आन्दोलन के प्रवर्तक बासव और उनके अनुयायियों की धार्मिक साहित्यिक रचनाओं **(वचम)** ने मध्यकालीन कन्नड़ साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 14वीं सदी में एक वीरशैव कवि, भीम कवि ने बासव पुराण की रचना की। 16वीं शताब्दियों के मध्य, विजयनगर के राजाओं व उनके सामन्तों के संरक्षण में कन्नड़ साहितय का और विकास हुआ। इस युग के महान कवियों में एक कुमार व्यास था जिसने 15वीं सदी के मध्य में 'महाभारत' का कन्नड़ में अनुवाद किया।

2.3.10 मलयालम साहित्य

दक्षिणी भारतीय भाषाओं में मलयालम का इतिहास सबसे नवीन है यह मालाबार प्रदेश में तमिल की उपभाषा के रूप में विकसित हुई। धीरे–धीरे इसने स्वंय को तमिल से मुक्त कर 14वीं सदी में एक स्वतंत्र दर्जा प्राप्त किया। मालावार क्षेत्र का तमिलनाडु से राजनीतिक अलगाव और विदेशियों द्वारा नवीन भाषाई शैलियों के प्रचलन से मलयालम का एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास सम्भव हुआ। अति प्रारम्भिक साहित्य मौखिक शैली का था जिसमें गीत और गाथाएँ होती थीं। प्रारम्भिक साहित्यिक रचना 14वीं शताब्दी की रामचरितम् थी। 16वीं सदी के मलयालम साहित्य पर संस्कृत का गहरा प्रभाव पड़ा और इसने संस्कृत के कई तत्वों को प्रभावित किया।

2.4 सारांश

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में गैर फारसी साहितय तथा क्षेत्रीय साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनेक उत्कृष्ट रचनाओं के साथ महाभारत, रामायण जेसी रचनाओं का भी क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद हुआ और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से साहित्य जनसाधारण तक पहुँच सका।

2.5 महत्वपूर्ण बिन्दु

- पृथ्वीराज रासो की रचना, पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्दबरदायी ने की।
- वीर रस के प्रसिद्ध महाकाव्य 'आल्हाखण्ड' की रचना जगनिक ने की।
- मलिक मोहम्मद जायसी की प्रसिद्ध रचना पदमावत् है।
- अलबरूनी अरबी भाषा का प्रसिद्ध विद्वान था जो महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। उसने अरबी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तक **'तहकीक–ए–हिन्द'** लिखी।
- विजयनगर के सम्राट कृष्ण देवराय ने संस्कृत में जाम्बवती कल्याण की रचना की।
- सिखों के पांचवे गुरू अर्जुनदेव ने 'आदिग्रन्थ' की रचना की।
- विजयनगर के शासक कृष्णदेव राय ने तेलगू भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ **'अमुक्तमाल्यदा'** की रचना की।

2.6 शब्दावली

1. वीर काव्य–ऐसा ऐतिहासिक काव्य जिसमें वीर अथवा श्रेष्ठ पुरूष की गाथा हो (जैसे पृथ्वीराज रासो एक वीर काव्य है)
2. दन्तकथाएँ–कोई ऐसी अप्रामाणिक अथवा कल्पित कथा जिसे लोग परम्परा से सुनते चले आये हो।
3. लोक साहित्य–जनता में प्रचलित साहित्य।
4. रूपान्तरण–एक रूप से दूसरे रूप में आने या लाये जाने की क्रिया।
5. पौराणिक कथाएँ–पुराणों में लिखी कथाएँ, पौराणिक कथाएँ कहलाती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनत एवं मुग़लकाल में गैर फारसी साहित्य के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2. मध्यकाल में क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(1) पंजाबी साहित्य (2) बंगाली साहित्य (3) असमी साहित्य (4) मराठी साहित्य (5) गुजराती (6) तमिल

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. 'पद्मावत' की रचना किसके द्वारा की गयी ?

(अ) मलिक मुहम्मद जायसी (ब) रहीम (स) रसखान (द) कबीरदास

2. 'आदि–ग्रन्थ' का संकलन सिखों के कौन से गुरू ने किया ?

(अ) गुरूनानक (ब) गुरू तेगबहादुर (स) गुरू गोविन्द सिंह (द) गुरू अर्जुन देव

3. तेलगू भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ **'अमुक्तमाल्यदा'** की रचना विजयनगर साम्राज्य के किस राजा के द्वारा की गयी ?

(अ) वीर नरसिंह (ब) कृष्णदेव राय (स) नरसा नायक (द) हरिहर

4. कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी' में किस जगह के इतिहास की जानकारी मिलती है ?

(अ) बंगाल (ब) राजस्थान (स) पंजाब (द) कश्मीर

5. संत एकनाथ एवं तुकाराम का सम्बन्ध किस क्षेत्रीय साहितय से था ?

(अ) मराठी साहित्य (ब) असमी साहित्य (स) गुजराती साहित्य (द) कन्नड़ साहित्य

उत्तर– 1–अ, 2–द, 3–ब, 4–द, 5–अ

इकाई तृतीय– मध्यकालीन भारत में हिन्दी साहित्य–अरबी, तुर्की, उर्दू, संस्कृत एवं क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य

इकाई की रूपरेखा :

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मध्यकालीन भारत में साहित्य

3.3 मध्यकालीन भारत में अरबी साहित्य

3.4 मध्यकालीन भारत में तुर्की साहित्य

3.5 मध्यकालीन भारत में उर्दू साहित्य

3.6 मध्यकालीन भारत में संस्कृत साहित्य

3.7 अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य

3.8 सारांश

3.9 महत्वपूर्ण बिन्दु

3.10 शब्दावली

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः
- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के बारे में जान सकेंगे।
- मध्यकालीन में प्रचलित क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के बारे में जान सकेंगे।
- मध्यकाल साहितय के क्षेत्र में स्वर्णयुग कहलाने योग्य क्यों हैं ? इसके बारे में जान सकेंगे।
- मध्यकाल के प्रमुख विद्वानों के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना :

मध्यकालीन भारत में साहित्य के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति हुई थी। सल्तनत कालीन एवं मुगलकालीन बादशाहों ने अनेक विद्वानों को अपने दरबार में आश्रय दिया जिन्होंने शासकों के संरक्षण में रहकर अनेक साहित्यक ग्रन्थों की रचना की। इसके अलावा इस समय प्रचलित भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों कबीर, नानक, रैदास, तुलसी, मीराबाई आदि ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से साहित्य की प्रगति में योगदान दिया। मध्यकाल में अरबी, फारसी, तुर्की, उर्दू, हिन्दी, संस्कृत एवं क्षेत्रीय भाषाओं में मराठी, बंगाली, तमिल आदि भाषाओं का विकास हुआ अनेक उत्कृष्ठ ग्रन्थों की रचना हुई। महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। मध्यकाल में साहित्य की अत्यधिक उन्नति के करण ही मध्ययुग साहित्य के क्षेत्र में स्वर्णयुग कहलाता है।

3.2 मध्यकालीन भारत में हिन्दी साहित्यः

प्राचीन राजसभाओं के उदार आश्रय ने हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान दिया। पृथ्वीराज चौहान की राजभाषा के कवि चन्दरबाई और हिन्दी के प्रथम महाकाव्य **'पृथ्वीराजरासो'** के लेखक हिन्दी के सर्वप्रथम कवि थे। पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज चौहान के जीवन–चरित्र और मुसलमानों से किये गये युद्ध का वर्णन है। 'चन्दवरदाई' के समकालीन कवि जागनिक था जिसने **'आल्हाखण्ड'** नामक प्रसिद्ध गीतकाव्य की रचना की इसमें ओजस्वी भाषा में महोवा के आल्हा और ऊदल के युद्ध और प्रेम के प्रसंगों का वर्णन है। विद्याधर ने कन्नौज के नरेश जयचन्द के प्रताप और पराक्रम का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। शारंगधर का **'हम्मीररासो'** और हमीर काव्य इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है। इसी प्रकार नाल्हसिंह ने **'विजयपाल रासो'** नरपतनाथ ने वीर–मति के रूप में **'बीसलदेव रासो'** और एक अन्य अज्ञात कवि ने **'खुमान रासो'** जिसमें श्रीराम से लेकर खुमान तक के युद्धों का वर्णन है। इन सभी ग्रन्थों को काल वीरगाथा काल कहा गया है। इसके हिन्दी में धार्मिक सुधारकों व सन्तों के पवित्र ग्रन्थों का युग आरम्भ होता है।

समाज सुधारक सन्तों ने भी हिन्दी में अनेक वचनाओं की रचना की। तुलसी का **'रामचरितमानस'** अवधी भाषा का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। कबीर का **'बीजक'** रैदास का **'वाणी'** गुरूनानक के उपदेशों का संग्रह हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मुगलों के आने के समय तक हिन्दी भाषा ने साहित्यक भाषा का रूप ग्रहण कर लिया

था। बाबर हुमायूँ शेरशाह के समय में हिन्दी को राजकीय संरक्षण प्राप्त नहीं था, परन्तु फिर भी व्यक्तिगत प्रयास से **'पद्मावत'** और **'युगावत'** नामक दो श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना हुई। अकबर की उदारता और धार्मिक सहनशीलता की नीति ने हिन्दी साहित्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। उसके समय में हिन्दी साहितय को राजकीय संरक्षण प्रदान किया गया परन्तु हिन्दी साहित्य का निर्माण केवल दरबार के संरक्षण पर निर्भर नहीं रहा। व्यक्तिगत प्रयत्नों के कारण भी महान् ग्रन्थों की रचना इस काल में हुई। राजा बीरबल, राजा मानसिंह, राजा भगवान सिंह, नरहरि और हरिनाथ दरबार से सम्बन्धित विद्वान थे। अकबर ने बीरबल को **'कविप्रिय'** की उपाधि प्रदान की तथा नरहरि चक्रवर्ती को **'महापात्र'** की उपाधि प्रदान की। नन्दास, विट्ठलनाथ, परमानन्ददास, कुम्भनदास आदि ऐसे कवि थे जिन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य को धनवान बनाया। इसके अतिरिक्त ऐसे अन्य व्यक्तियों के नाम भी लिए जा सकते हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा की। अकबर के दरबार में प्रसिद्ध ग्रन्थकर्ताओं में प्रमुख कश्मीर का मुहम्मद हुसैन था जिसे अकबर ने **'जरीकलम'** की उपाधि दी। परन्तु उस समय के हिन्दी विद्वानों में तुलसी और सूरदास का विशेष महत्व है। तुलसी ने 25 ग्रन्थों की रचना की जिनमें **'रामचरितमानस'** और **'विनय–पत्रिका'** का सर्वश्रेष्ठ स्थान माना गया है। अकबर के समय का हिन्दी साहित्य अब्दुर्रहीम खानखाना और रसखान को सम्मिलित किये बिना पूरा नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से मुसलमानों ने हिन्दी साहित्य की सेवा की। परन्तु अब्दुर्रहीम के सैंकड़ों पद दोहे और सतसैया कृष्ण भक्ति पर लिखे गये। रसखान के भजन और **'प्रेमवाटिका'** नामक काव्य ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियां हैं अकबर का समय हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल था, यह निःसंदेह स्वीकार किया जा सकता है।

जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी हिन्दू विद्वानों का सम्मान किया। जहाँगीर का भाई दानियाल हिन्दी में कविता करता था और जहाँगीर के दरबार में वृक्षराय, राजासूर सिंह, रायमनोहर लाल, विशनदास जैसे हिन्दी के विद्वान थे। शाहजहाँ के काल में भी हिन्दी की काफी प्रगति हुई। सुन्दर कविराय जिन्होंने **'सुन्दर–श्रंगार'** लिखा, सेनापति जिन्होंने **'कवित्त रत्नाकार'** लिखा। कविन्द्र आचार्य जिन्होंने **'कविन्द्र कल्पतरू'** नामक कविता को मिश्रित अवधी और ब्रजभाषा में लिखा तथा शिरोमणि मिश्र, बनारसीदास, भूषण, मतिराम, वेदांगराय, हरिनाथ आदि हिन्दी के विद्वान शाहजहाँ से संरक्षण प्राप्त किये हुए थे। इसके अतिरिक्त कविदेव ने अनेक धार्मिक कविताओं की रचना की। हिन्दी के महान कवि बिहारी को राजा जयसिंह से संरक्षण प्राप्त था। उनके द्वारा रचे गये दोहे अभी तक हिन्दी में श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। इसी समय में महाकवि केशव

केशवदास ओरछा में हुए। उनके द्वारा रचित **'कविप्रिया'**, **'रसिकप्रिया'** और **'अलंकार मंजरी'** का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। औरंगजेब ने हिन्दी को संरक्षण नहीं दिया, परन्तु तब भी हिन्दू राजाओं के संरक्षण और व्यक्तिगत प्रयत्नों से 18वीं सदी तक हिन्दी की निरन्तर प्रगति होती रही।

3.3 मध्यकालीन भारत में अरबी साहित्य

मुसलमानों द्वारा सबसे अधिक साहित्यक और वैज्ञानिक ग्रन्थ अरबी में रचे गये जो पैगम्बर की भाषा थी और जिसे स्पेन से लेकर बगदाद तक साहित्य और विज्ञान की भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता था लेकिन जो तुर्क भारत आये वे फारसी भाषा से बहुत अधिक प्रभावित थे जो मध्य एशिया में दसवीं शताब्दी में ही साहित्य और प्रशासन की भाषा थी भारत में अरबी का प्रयोग अधिकतर इस्लामी विद्वानों, विधिशास्त्रियों और दार्शनिकों द्वारा एक छोटे से हिस्से तक सीमित रहा और इन विषयों पर अधिकांश मौलिक साहित्य अरबी में रचा गया। विज्ञान और खगोलकीय की कुछ रचनाओं के अरबी से अनुवाद भी हुए।

अलवरूनी अरबी भाषा का प्रसिद्ध विद्वान था जो महमूद गज़नवी के आक्रमण के साथ भारत आया। उसने अरबी भाषा की प्रसिद्ध पुस्तक **'तहकीक–ए–हिन्द'** लिखी। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसमें 80 अध्याय हैं इसमें अलवरूनी ने भारत की प्राकृतिक परिस्थितियों अर्थात् नदी, पहाड़, मैदान, जलवायु आदि के विषय में लिखा है। इसमें भारतीय भाषाओं, रीति–रिवाज़ों, सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक दर्शन और मान्यताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

3.4 मध्यकालीन भारत में तुर्की साहित्य

मध्यकाल में तुर्की भाषा में भी रचना लिखी गई जिसमें तैमूरलंग की आत्मकथा **'मलफूजात–ए–तैमूरी'** महत्वपूर्ण है। इसका फारसी में भी अनुवाद हुआ। तुर्की भाषा की दूसरी महत्वपूर्ण कृति **'तुजुक–ए–बाबरी'** है। साहित्यिक दृष्टि से इसे बहुत उत्कृष्ट रचना माना गया है इसी कारण इसका कई बार फारसी भाषा में अनुवाद हुआ तथा बाद में अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ।

3.5 उर्दू साहित्य

मध्य युग के साहितय के क्षेत्र में अन्य सफलता उर्दू का विकास था। संस्कृत से उत्पन्न हुई विचारधाराओं और भाषाओं के साथ फारसी तुर्की और अरबी शब्दों के

विचारों के समश्रिण से उर्दू भाषा का विकास हुआ। इसमें अरबी, फारसी, तुर्की पश्चिमी हिन्दी दिल्ली प्रदेश की स्थानीय भाषा के शब्द हैं। इस भाषा की बनावट और व्याकरण अधिकांशतः हिन्दी के समान है। कालान्तर में इसके विदेशी शब्दों का विदेशीपन और फारसी शब्दों का फारसीपन कम होता गया और हिन्दी का रंग प्रकट होता गया। मुसलमानों और हिन्दुओं के सम्पर्क और दैनिक आवश्यकताओं से प्रेरित आदान–प्रदान के कारण धीरे–धीरे एक समान भाषा का विकास हुआ जिसे उर्दू कहा गया। उर्दू को पहले **जबान–ए–हिन्दवी** पुकारा गया था, बाद में उर्दू पुकारा गया। कालान्तर में उर्दू को रेख्ता भी कहा जाने लगा।

अमीर खुसरों पहला विद्वान था जिसने उर्दू भाषा को अपनी कविताओं का माध्यम बनाया। इसके पश्चात् सूफी सन्तों और भक्ति मार्ग के कुछ सन्तों ने अपने विचारों के प्रचार के लिए इसका प्रयोग किया तथा इसे लोकप्रिय बनाने में सहायता प्रदान की। परन्तु उर्दू को किसी तुर्क या अफगान शासक ने मान्यता प्रदान नहीं की। शक्तिशाली मुगल बादशाहों ने भी उर्दू को कोई संरक्षण प्रदान नहीं किया। मुगल बादशाहों के समय में भी उर्दू के विख्यात विद्वान हुए। नूरी आजमपुरी हज़रत, कमालुद्दीन मखद्दम, शेख सादी और मुहम्मद अफजल उर्दू के ऐसे विद्वान थे जो अकबर के समकालीन थे। शाहजहाँ के शासनकाल में हुए उर्दू के विद्वानों में नासिर और पंडित चन्द्रभान थे। मुगल बादशाह में मुहम्मद शाह पहला बादशाह था जिसने उर्दू को प्रोत्साहन दिया। उस समय तक दक्षिण भारत के मुसलमानी राज्यों में यह भाषा लोकप्रिय हो चुकी थी। मुहम्मद शाह ने दक्षिण के प्रसिद्ध कवि शम्सुद्दीन वली को अपने दरबार में बुलाकर सम्मानित किया। दक्षिण में गोलकुण्डा का सुल्तान, मुहम्मद कुली कुतुबशाह (1519–1555) उर्दू का एक बड़ा कवि और विद्वान था। बीजापुर के सुल्तानों ने भी उर्दू भाषा को संरक्षण प्रदान किया। **'यूसूफ–वा–जुलेखामसन'** के लेखक दक्षिण भारत में ही हुए। परन्तु औरंगाबाद का विद्वान वली (1668–1744 ई0) उर्दू के समकालीन विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ था जिसने गज़ल, मसनवी आदि को सरल स्वाभाविक उर्दू भाषा में लिखा। उसी ने मुगल दरबार में उर्दू शायरी को आरम्भ किया। उर्दू के विद्वानों में हातिम, खान आरजू, अबू और अज़हर के नाम विख्यात हुए जिन्हें उत्तर भारत में उर्दू शायरी का पिता माना गया। 18वीं सदी के आरम्भ में दिल्ली उर्दू साहित्य की शिक्षा का केन्द्र बन गया और गालिब, शाह, नासिर आदि विद्वानों ने उर्दू साहित्य को धनवान बनाया। 19वीं सदी में अंग्रेजों ने उर्दू भाषा को प्रोत्साहन दिया और उत्तर भारत के बड़े भाग में यह भाषा लोकप्रिय बन गयी तथा अनेक विद्वानों ने अपने लेखन से इसे साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध बनाया।

3.6 मध्यकालीन भारत में संस्कृत साहित्य

मध्यकाल में संस्कृत साहित्य को हिन्दू शासकों से संरक्षण प्राप्त था, मुख्यतया विजयनगर, बारंगल और गुजरात के शासकों से। संस्कृत में काव्य, नाटक, दर्शन, टीकाएँ आदि सभी कुछ लिखा गया। रचनाओं की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में आभाव न रहा परन्तु इस युग के ग्रन्थों में मौलिकता का आभाव रहा। हमीरदेव, कुम्भकर्ण, प्रतापरूद्रदेव, बसन्तराज, वेमभूभाल, कात्यदेव, विरूपाक्ष, नरसिंह, कृष्ण देवराय, भूपाल आदि अनेक ऐसे शासक हुए जिन्होंने संस्कृत साहित्य का पोषण किया प्रतापरूद्र देव के दरबार के विद्वान अगस्त्य ने **'प्रतापरूद्रदेव यषोभूषन', 'कृष्ण चरित्र'** आदि ग्रन्थों की रचना की। विद्याचक्रवर्तिन तृतीय ने वीर बल्लाल तृतीय के संरक्षण में 'रूक्मिणी **कल्याण'** लिखा और माधव ने विजयनगर के शासक विरूपाक्ष के संरक्षण में **'नर्कासुर विजय'** की रचना की। जैन विद्वान जयचन्द ने संस्कृत में **'हमीर–काव्य'** लिखा। विजय नगर के सम्राट विरूपाक्ष ने स्वयं **'नारायण–विलास'** और कृष्णदेवराय ने **'जाम्बवती कल्याण'** तथा अन्य कई पुस्तकें लिखी थीं जयदेव ने **'गीत–गोविन्द'**, जयसिंह ने **'हम्मीर मद–मर्दन'** और गांधर ने **'गंगादास प्रताप विलास'** लिखा। कल्हण द्वारा **'राजतरंगिणी'** में कश्मीर का इतिहास चित्रित किया गया।

मुगलकाल में संस्कृत की मौलिक रचनाओं का आभाव रहा, परन्तु तब भी संस्कृत भाषा की स्थिति पहले के मुसलमानी काल से अच्छी रही। अकबर ने संस्कृत के विद्वानों का सम्मान किया। अबुल फजल ने उसके समय के संस्कृत के अनेक विद्वानों का उल्लेख किया है। उसके समय में संस्कृत और फारसी भाषा का एक कोष **'फारसी–प्रकाश'** तैयार किया गया। दरभंगा के महेश ठाकुर ने अकबर के समय के इतिहास को संस्कृत में लिखा, और जैन विद्वान पद्यसुन्दर ने **'अकबरशाही श्रृंगार–दर्पण'** को लिखा, जैन आचार्य सिद्धचन्द्र उपाध्याय ने **'भानुचन्द्र चरित्र'** में अकबर के दरबार में गये जैन साधुओं के बारे में लिखा और देवविमल तथा अन्य विद्वानों ने भी संस्कृत में अपनी रचनाएँ लिखीं। शाहजहाँ के समय में जगन्नाथ पण्डित ने **'रस गंगाधर'** और **'गंगा–लहरी'** की रचना की। औरंगजेब ने संस्कृत को संरक्षण देना बन्द कर दिया। हिन्दू राजाओं से इसे संरक्षण मिलता रहा, परन्तु बाद में इसकी प्रगति होती रही।

3.7 अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य

मध्यकाल में अनेक क्षेत्रीय भाषाओं का भी विकास हुआ। बंगला, मराठी, तमिल भाषाओं में उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएँ लिखी गईं। नुसरत शाह ने **'महाभारत'** का बंगाली भाषा में अनुवाद किया। सुल्तान हुसैन शाह ने **'गीता'** का अनुवाद बंगाली में किया। गुजराती साहित्य में गुणरत्न सूरी का **'भारतबाहुबली'** विजयभद्रा का शीलरस उदयवंत का **'गौतम–स्वामी–रस'** और सुन्दर सूरी का **'शीलरस'** बहुत विख्यात हुए। दक्षिण भारत में 13वीं सदी में शैव आन्दोलन के परिणाम स्वरूप तमिल साहित्य की प्रगति हुई और विजय नगर के सम्राटों ने संस्कृत तेलगू और कन्नड़ भाषाओं के निर्माण में योगदान दिया। राजा बुक्का प्रथम ने तेलगू साहित्य के विकास में प्रोत्साहन दिया। उसने तेलगू के महान विद्वान नछन सोम को संरक्षण प्रदान किया। राजा देवराय द्वितीय ने 24 कवियों को संरक्षण प्रदान किया था। तमिल और कन्नड़ के विद्वानों को भी देवराय ने संरक्षण प्रदान किया। कृष्णदेवराय स्वयं एक विद्वान शासक था उसने स्वयं तेलगू ग्रन्थ **'आमुक्तमाल्यदा'** की रचना की।

3.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अरबी और तुर्की साहित्य की काफी उन्नति हुई। अनेक बादशाहों का संरक्षण भी मिलता रहा। तुर्की भाषा में बाबर व तैमूर लंग ने तो अपनी आत्मकथा लिखी मध्यकालीन साहित्य में उसका अद्वितीय स्थान है। बाबर की आत्मकथा **'तुजुक–ए–बाबरी'** का कई बार फारसी में अनुवाद हुआ जिससे उसके महत्व के बारे में पता चलता है। अरबी साहित्य की अत्यधिक उन्नति न हो सकी क्योंकि उसका स्थान फारसी ने ले लिया था फिर भी अलवरूनी की **'तहकीक–ए–हिन्द'** अरबी भाषा की श्रेष्ठ कृति है। मध्यकालीन में एक नई भाषा उर्दू का भी विकास हुआ। अमीर खुसरों ने अपनी कविताओं का माध्यम उर्दू भाषा को बनाया। मध्यकाल में संस्कृत में भी महत्वपूर्ण कृतियों की भी रचना हुई **'रस गंगाधर'** तथा गंगा लहरी संस्कृत की महत्वपूर्ण रचनाएँ थीं। हिन्दी के क्षेत्र में भी प्रगति हुई और अनेक विद्वान लेखकों व भक्तिकालीन सन्तों ने इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया और अपने उपदेशों को हिन्दी के माध्यम से जनता तक पहुँचाया।

3.9 महत्वपूर्ण बिन्दु

- अलबरूनी अरबी का विद्वान था जिसने **'तहकीक–ए–हिन्द'** नामक महत्वपूर्ण किताब लिखी।

- चन्द्रवरदाई द्वारा लिखित **'पृथ्वीराज रासो'** को हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।
- वीर रस का प्रसिद्ध महाकाव्य **'आल्हाखण्ड'** जगनिक ने लिखा।
- बाबर ने अपनी आत्मकथा **'तुजुक–ए–बाबरी'** तुर्की भाषा में लिखी।
- **'मलफूजात–ए–तैमूरी'** तैमूरलंग की आत्मकथा है जिसे तैमूर ने तुर्की भाषा में लिखवाया था।
- अमीर खुसरों उर्दू भाषा का पहला विद्वान था जिसने कविता का माध्यम उर्दू भाषा को बनाया।
- अब्दुर्रहीम अकबर के दरबारी कवि थे जो कृष्ण भक्ति शाखा से सम्बन्धित थे।

3.10 शब्दावली

1. वीरगाथा काल – हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल को आचार्य रामचंद्र शुक्त ने वीरगाथा काल कहा है।
2. विधिशास्त्री – विधि शास्त्र के विद्वान
3. मसनवी – यह काव्य का ऐसा रूप है जिसमें हर शेर के दोनों मिसरे एक ही रदीफ़ और काफ़िए में होते हैं। हर शेर का रदीफ़ और काफ़िया अलग–अलग भी हो सकता है इसलिए मसनवी में शायर को क्रमबद्ध विषय वर्णन में आसानी होती है।
4. टीकाएँ – ग्रन्थों के भाष्य अथवा विवरण लेखों को कहा जाता है।
5. मौलिक – मूल सिद्धान्त के अनुसार

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यकालीन भारत में हिन्दी साहित्य के विकास का वर्णन कीजिए।
2. मध्यकालीन भारत में उर्दू के उद्‌भव एवं विकास का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय

1. अलबरूनी द्वारा रचित 'तहकीक–ए–हिन्द' पर एक लेख लिखिए।
2. मध्यकालीन भारत में संस्कृत के विकास का उल्लेख कीजिए।
3. मध्यकाल में क्षेत्रीय भाषाओं के विकास पर प्रकाश डालिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. रामचरिमानस के रचयिता कौन है ?

(अ) सूरदास (ब) कबीरदास (स) तुलसीदास (द) मीराबाई

2. अकबर के दरबार में किस विद्वान को 'कविप्रिय' की उपाधि दी गयी ?

(अ) अब्दुर्रहीम खानखाना (ब) भगवानदास (स) मानसिंह (द) बीरबल

3. सल्तनत काल में उर्दू भाषा का पहला विद्वान कौन था ?
(अ) बरनी (ब) शम्स–ए–सिराज़ अफीक (स) अमीर खुसरो (द) मिन्हास–उस–सिराज

4. चन्द्रवरदाई किस प्रसिद्ध राजा के मित्र तथा राजकवि थे ?
(अ) पृथ्वीराज चौहान (ब) जयचन्द्र (स) मूलराज द्वितीय (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

5. तैमूर लंग की आत्मकथा मलफूज़ात–ए–तैमूरी किस भाषा में लिखित ग्रन्थ है ?
(अ) अरबी (ब) तुर्की (स) फारसी (द) उर्दू

उत्तर – 1–स, 2–द, 3–स, 4–अ, 5–ब

इकाई चतुर्थ – सूफी एवं भक्ति साहित्य

इकाई की रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सूफी साहित्य की विशेषताएँ

4.3 प्रमुख सूफी साहित्य

4.4 भक्ति साहित्य की विशेषताएँ

4.5 प्रमुख भक्ति साहित्य

4.6 सारांश

4.7 महत्वपूर्ण बिन्दु

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- सूफी एवं भक्ति साहित्य के बारे में जान सकेंगे;
- सूफी एवं भक्ति साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ;
- भक्तिकालीन कवियों के बारे में जान सकेंगे'
- सूफी एवं भक्ति साहित्य के महत्व को समझ सकेंगे'
- सूफी एवं भक्ति साहित्य में अन्तर को जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की काव्यधारा निर्गुण और सगुण काव्यधारा के रूप में विकसित हुई। निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत कवियों ने ईश्वर के निरंकार स्वरूप को मानकर

काव्य रचना की तथा सगुण काव्य धारा के कवियों ने ईश्वर को साकार रूप में मानकर काव्य रचना की। निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गी शाखा से सम्बन्धित कवि भक्ति आन्दोलन के सन्त थे तथा प्रेममार्गी शाखा से सूफी सन्त सम्बन्धित थे इसीलिए प्रेममार्गी शाखा को सूफी काव्यधारा भी कहा जाता है। निर्गुणमार्गी भक्तों ने हिन्दू और मुसलमानों को पास लाने का प्रयास किया। सन्त कवियों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के कर्मकाण्ड की तीखी आलोचना करके सन्त साधना पर बल देकर एकता लानी चाही पर सूफी साधकों ने शुद्ध प्रेम का मार्ग अपनाया और उसके द्वारा दोनों को निकट लाने का प्रयास किया। इन प्रेमाश्रयी कवियों की प्रेम पद्धति पास के सूफियों के अनुसरण पर थी इसीलिए इन कवियों को सूफी कवि कहते हैं। सूफी प्रेम पद्धति में ईश्वर को नारी (प्रेमिका) और जीवात्मा (साधक) को पुरूष प्रेमी को कल्पित किया जाता है। इसके विपरीत भारतीय भक्ति पद्धति में भक्त अपने को स्त्री और भगवान को पतिरूप में मानकर साधना करता है। सगुण भक्ति के अन्तर्गत कवि राम–भक्ति और कृष्ण–भक्ति शाखा में विभाजित जिसमें कवियों ने राम और कृष्ण को ईश्वर स्वरूप माना है।

4.2 सूफी साहित्य की विषेषताएँ

सूफी साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(i) कवियों ने अपने साहित्य में प्रेम कथाओं का वर्णन किया है।

(ii) कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे को निकट लाने का प्रयत्न किया।

(iii) मुसलमान होते हुए भी इन कवियों ने हिन्दू संस्कृति, हिन्दूओं के आचार–विचार, देवी–देवताओं आदि का अपने काव्य में समावेश किया।

(iv) ये सभी कवि सूफी थे इसलिए इन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का भी काव्यात्मक निरूपण किया है सूफी सिद्धान्तों के अनुसार लौकिक प्रेम के माध्यम से ही अलौकिक प्रेम की प्राप्ति सम्भव है।

(v) ये कवि निराकार से प्रेम करते थे, इसलिए ये सच्चे अर्थों में रहस्यवादी थे इनके अनुसार यह संसार उस परमब्रह्म की छाया है यहाँ जो भी सुन्दर और शोभन है वह उसी का प्रतिबन्ध है।

(घ) भाषा के रूप में कवियों ने पूरबी–अवधी का प्रयोग किया है जो पश्चिमी अवधी की अपेक्षा कम साहित्यिक व बोलचाल की भाषा के अधिक निकट होने से बड़ी सहज व मीठी है। छन्द के रूप में इनके दोहे चौपाई का प्रयोग बड़ी सीमीचीन है।

(ङ) कवियों की साधना वस्तुतः विरह की साधना है। आत्मा परमात्मा से बिछुड़कर उसके वियोग में तड़प रही है।

4.3 प्रमुख सूफी साहित्य

कुछ प्रसिद्ध सूफी कवियों व उनकी रचनाओं का विवरण निम्नलिखित है–

असाइत की **'हंसावली'** प्रेमाख्यान परम्परा की सबसे प्राचीन कृति है इसका रचनाकाल 1370 ई0. है इस प्रेमाख्यान में राजस्थानी भाषा के प्राचीन रूप का प्रयोग हुआ। कवि असइत ने इस कृति का रचना स्रोत विक्रम एवं प्रेम कथा को माना है।

सूफी साहित्य का प्रथम कवि मुल्ला दाऊद को माना जाता है इनकी प्रसिद्ध कृति 'चन्दायन' जो कि 1379 ई0 में लिखी मानी जाती है। दामोदर कवि ने **'लखमसेन पद्मावतीकथा'** की रचना सन् 1459 ई0 में की इसमें चौपाई के अतिरिक्त दोहा सोरठा आदि का प्रयोग किया गया है। कल्लोल कवि द्वारा रचित **'ढोला मारू रा दूहा'** राजस्थानी प्रेमाख्यान है इसकी रचना 1443 ई0 में हुई। इसमें केवल दोहे का प्रयोग किया गया है तथा भाषा पुरानी राजस्थानी है। एक अन्य सूफी कवि ईश्वरदास ने **'सत्यवतीकथा'** की रचना की। जिसका रचनाकाल 1501 ई0 निर्धारित है। कुतुबुन ने **'मृगावती'** की रचना की जिसका रचनाकाल 1503 ई0 है। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे, तथा जौनपुर के बादशाह के हुसैनशाह के अश्रित थे। गजपति ने **'माधवानल कामकन्दला'** की रचना की। इसका रचनाकाल 1527 ई0 है इसमें नायक माधव और नृत्य विशारदा शैली में किया गया है। इसमें दोहे का प्रयोग किया गया है इसकी भाषा राजस्थानी हिन्दी है।

एक अन्य महत्वपूर्ण सूफी सन्त मलिक मोहम्मद जायसी है। इनका जन्म 1492 ई0 के लगभग हुआ था। जायसी सूफी काव्यधारा (प्रेमामार्गी) के प्रमुख प्रतिनिधि थे इन्होंने छोटे बड़े मिलाकर 42 ग्रन्थों की रचना की जिसमें प्रमुख इस प्रकार है :

अखरावट–इसमें वर्णमाला के एक–एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त सम्बन्धी तत्वों से भरी चौपाइया कही गयी हैं इस छोटी–सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं। इसमें सूफी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

आखरी कलाम–इसमें सृष्टि के अन्त की कथा है, जिसे कयामत कहते हैं।

कान्हावत–इसमें कृष्ण की कथा है।

चित्ररेखा–इसमें चन्द्रपुर के राजा चन्द्रभान की पुत्री चित्ररेखा और कन्नौज के राजा कल्याण सिंह के पुत्र प्रीतम कुँवर की कहानी वर्णित है।

पद्मावत–75 खण्डों में विभाजित पद्मावत सूफी परम्परा का प्रौणतय काव्य है इसका रचनाकाल 1540 ई0 है। इसमे दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग है। इसकी भाषा ठेठ अवधी है। यह एक रूपक काव्य है।

एक सूफी कवि मंझन थे जिन्होंने 'मधमालती' की रचना की। इस ग्रन्थ की भाषा अवधी है यह 1540 ई0 में लिखा गया। जटमल ने 'प्रेमविलास प्रेमलता की कथा' की रचना 1556 ई0 में की। नन्ददास ने 'रूपमंजरी' की रचना की। इसमें रूपमंजरी और कृष्ण के प्रेम का चित्रण अत्यन्त स्वच्छंद रूप में किया गया है। आलम ने **'माधवनल कामकंदला'** की रचना की। नारायणदास ने 'छिताईवार्ता' की रचना की। पुहर कवि ने **'रसरतन'** की रचना की। शेखनवी ने 'ज्ञानदीप' की रचना 1619 ई0 में की। ये जहाँगीर के समय में थे इनकी भाषा अवधी है। नरपति व्यास ने **'नल–दयन्ती'** की रचना की, जिसका रचनाकाल 1625 ई0 है। काशिमशाह ने **'हंस जवाहिर'** की रचना की। इसका रचनाकाल 1731 ई0 के आसपास माना जाता है।

इन सब के अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण सूफी कवि 'जान कवि' थे। इनका रचनाकाल 1612–1664 ई0 माना जाता है। इन्होंने कथा रत्नावती, कथा कलन्दर, कथा नलदमयंती, कथा कलावती, कथा पिजरशा, शहिजादे व देवलदे तथा कथा मोहनी आदि की रचना की।

4.4 भक्ति साहित्य की विशेषताएँ

भक्ति साहित्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(i) भक्ति कवियों ने समाज सुधार के उद्देश्य से रचनाएँ की।

(i) भक्ति साहित्य सगुण काव्यधारा और निर्गुण काव्यधारा में विभाजित है। निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखा में साहितय विभाजित हैं तथा सगुण काव्यधारा के अर्न्तगत रामभक्ति और कृष्णभक्ति में साहित्य विभाजित हैं।

(ii) यह साहित्य हिन्दी की अनेक उपभाषाओं में लिखा गया।

(iii) सन्त कवियों ने अपनी रचनाओं गुरू को अत्यधिक महत्व दिया है।

(iv) जाति–पाति का सन्त कवियों ने किया है।

(v) सभी निर्गुण सन्त कवियों ने रूढ़ियों मिथ्या, आडम्बरों, अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है।

(vi) निर्गुण सन्त कवियों में रहस्यवाद की भावना मुख्य रूप से दिखाई देती है। रहस्य की दृष्टि इनका साहित्य अनुपम है।

(vii) सम्पूर्ण सन्त साहित्य में श्रंगार एवं शान्त रस का चित्रण अधिक रूप में हुआ है। इन कवियों ने संयोग और वियोग इस प्रणय की दोनों अवस्थाओं का अत्यन्त कलात्मक एवं मनोहरी चित्रण किया गया है।

(viii) निर्गुण सन्त कवियों की काव्य रचनाओं में दोहा, छनद, चौपाई, कविता, हंसपद आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

4.5 प्रमुख भक्ति साहित्य

भक्ति साहित्य का आरम्भ भक्ति आन्दोलन के साथ शुरू होता है। भक्ति काल के प्रमुख कवि कबीरदास जी हैं जो निर्गुण ब्रह्म के उपासग थे। इनके उपदेशों का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं साखी, सबद, रमैनी। इन्होंने अपने उपदेशों में अनेक भाषाओं का प्रयोग किया है निर्गुण भक्ति के एक अन्य सन्त रविदास जी हैं जिनके उपदेश **'वाणी'** नामक रचना में संग्रहित है।

सगुण भक्ति शाखा सन्त तुलसी, मीरा, रसखान, सूरदास, रहीम हैं। तुलासीदास जी ने अपनी रचनाओं में अवधी भाषा का प्रयोग किया है। तुलसी की प्रसिद्ध रचना 'रामचरित मानस' है जिसमें तुलसीदास जी ने भगवान राम का चरित्र–चित्रण किया है तथा उन्हें आराध्यदेव माना है इसके अलावा तुलसी दास जी ने विनयपत्रिका,

कवितावली, गीतावली, दोहावली, कृष्ण गीतावली, बरवै रामायण, रामलला नहछू, वैराग्य, संदीपनी, जनकी–मंगल, पार्वती–मंगल तथा रामज्ञा प्रश्न आदि की रचना की। कृष्ण भक्ति शाखा की कवियत्री मीराबाई की भक्ति साहित्य की महत्वपूर्ण देन है। मीरा ने चार महत्वपूर्ण ग्रन्थों–नरसीजी का मायरा, गीत गोविन्द टीका, रागगोविन्द, राग सोरठ के पद की रचना की। इसके अलावा मीराबाई के गीतों का संकलन 'मीराबाई की पदावली' नामक ग्रन्थ में किया गया है। कृष्ण भक्ति शाखा के एक और अन्य महत्वपूर्ण कवि सूरदास हैं। इनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ–सूरसागर, सूर–सारावली और साहित्य–लहरी है। इन्होंने ब्रज भाषा के माध्यम से रचनाएँ की हैं। सूरदास जी ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन बहुत सजीव एवं मोहक किया है। बिहारीलाल भी भक्तिकाल के प्रमुख कवि है। इनकी एक मात्र रचना सतसई है। ये मुक्तक काव्य है इसमें 713 दोहे हैं। अकबर के दरबारी कवि रहीम भी भक्तिकाल के महत्वपूर्ण कवि हैं इनकी प्रमुख रचनाएँ रहीम सतसई, श्रंगार सतसई, रहीम रत्नावली, बरवै नायिका भेद, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी प्रमुख हैं। कृष्ण–भक्ति शाखा के रसखान भी महत्वपूर्ण कवि हैं जिनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ–सुजान रसखान और प्रेमवाटिका हैं इन्होंने कृष्ण को अपना भगवान मानकर स्वयं को उनके प्रति समर्पित किया है।

केशवदास हालांकि रचना की दृष्टि से रीतकाल के कवि माने जाते हैं लेकिन काल के अनुसार भक्तिकाल के कवि माने जाते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ–कविप्रिया, रसिकप्रिय, रामचन्द्रिका, वीरसिंह चरित, विज्ञान गीता, रत्नबावनी, जहाँगीर जसचन्द्रिका हैं। नन्ददास जी का भंवरगीत, जैन साहित्य में विमलसूरि का **'पउम चरिउ'** भी भक्तिकाल की प्रमुख रचनाएँ हैं। रामभक्त काव्यधारा के प्रवर्तक रामानन्द ने रामार्चन पद्धति, वैष्णववमताब्ज भास्कर, हनुमान जी की आरती, रामरक्षास्रोत प्रमुख रचनाएँ हैं। इन्होंने रामभक्ति को जनसाधारण के लिए सरल बनाया। इन्होंने साहितय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया। एक अन्य सन्त जिन्होंने रामानन्द सम्प्रदाय की प्रधान पीठ गलताजी जयपुर में **'कृष्णदास पयहारी'** ने स्थापित की इन्होंने ध्यानमंजरी अष्टयाम, रामभजन मंजरी, उपासना बावनी, हितोपदेश भाषा प्रमुख रचनाएँ लिखी जो साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

4.6 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद स्पष्ट होता है कि भक्तिकाल में सूफी एवं भक्ति कवियों ने महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखीं जिससे मध्यकालीन साहित्य में अत्यधिक

उन्नति हुई। सूफी कवियों में जायसी का महत्वपूर्ण स्थान है जिन्होंने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। मुल्ला दाऊद का भी सूफी कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है जिन्हें सूफी काव्यधारा का पहला कवि माना जाता है। भक्ति साहित्य में तुलसी, कबीर, मीराबाई, सूरदास और केशव के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से इन कवियों की रचनाओं को उत्कृष्ट माना गया है। इन कवियों की महत्वपूर्ण रचनाओं के कारण ही भक्तिकाल युग साहित्य के क्षेत्र में स्वर्णयुग कहलाता है।

4.7 महत्वपूर्ण बिन्दु

- कबीरदास निर्गुण काव्यधारा से सम्बन्धित कवि है।
- कबीर की रचनाओं का संग्रह 'बीजक' के नाम से जाना जाता है जिसके प्रमुख तीन भाग साखी, सबद, रमैनी है।
- तुलसीदास जी ने अवधी भाषा में 'रामचरितमानस' की रचना की जो आज एक पूज्य ग्रन्थ माना जाता है।
- रैदास की रचनाओं के संग्रह को वाणी (वानी) नाम से जाना जाता है।
- रहीम अकबर के दरबारी कवि थे।
- सूफी कवि निर्गुण काव्यधारा की प्रेमामार्गी शाखा से सम्बन्धित कवि थे।
- सूफी कवियों ने ईश्वर को प्रेमिका के रूप में तथा खुद को एक प्रेमी के रूप में माना है।
- भक्ति कवियों ने ईश्वर को प्रेमी तथा उसके भक्त को प्रेमिका के रूप में माना जो सूफियों के ठीक विपरीत है।
- बिहारी की महत्वपूर्ण रचना 'सतसई' है जिसमें 713 दोहे हैं।
- सूरदास, मीराबाई, रसखान कृष्ण भक्ति शाखा से सम्बन्धित कवि हैं।

4.8 शब्दावली

(i) **निर्गुण**–निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत कवियों ने ईश्वर के निराकार रूप को मानकर काव्य रचना की।

(i) **सगुण**–सगुण काव्यधारा के कवियों ने ईश्वर के साकार रूप को मानकर काव्य रचना की।

(i) **ज्ञानमार्गी शाखा**–इस शाखा के भक्त कवि निर्गुणवादी थे और नाम की उपासना करते थे। गुरू को वे बहुत सम्मान देते थे और जात–पात के भेदों को अस्वीकार करते थे।

(iv) **प्रेममार्गी शाखा**–सूफी कवियों की इस समय की काव्यधारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होता है।

(v) **लौकिक**–लोक सम्बन्धी या सांसारिक

(vi) **आलौकिक**–जो लोक में ना मिलता हो या दिखा।

(vii) **रहस्यवादी**–रहस्यवाद संबंधी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सूफी साहित्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. भक्ति साहित्य की प्रमुख रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सगुण भक्ति धारा के प्रमुख संत तुलसीदास पर एक लेख लिखिए।
2. भक्ति साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. सूफी साहित्य के प्रमुख कवियों एवं उनकी रचनाओं की समीक्षा कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. किस कवि के उपदेशों का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है–

(अ) कबीरदास (ब) तुलसीदास (स) सूरदास (द) मलिक मुहम्मद जायसी

2. निम्नलिखित में से कौन सी रचना तुलसीदास द्वारा रचित नहीं है–

(अ) रामचरित मानस (ब) विनयपत्रिका (स) गीतावली (द) पद्मावत

3. निम्नलिखित में से कौन अकबर के दरबारी कवि थे–

(अ) रहीम (ब) कबीरदास (स) सूरदास (द) मीराबाई

4. सूरदास किस भक्ति शाखा के प्रसिद्ध संत थे–

(अ) निर्गुण (ब) सगुण (स) ज्ञानमार्गी (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

5. कविप्रिय, रसिकप्रिय किस कवि की रचनाएँ हैं–

(अ) रसखान (ब) केशवदास (स) भूषण (द) सूरदास

उत्तर– 1–अ, 2–द, 3–अ, 4–ब, 5–ब

इकाई पंचम– मध्यकालीन प्रमुख हिन्दी कवि

इकाई की रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 कबीर

5.3 सूरदास

5.4 तुलसीदास

5.5 मीराबाई

5.6 बिहारी

5.7 रहीम

5.8 रसखान

5.9 केशवदास

5.10 सारांश

5.11 महत्वपूर्ण बिन्दु

5.12 शब्दावली

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- आप मध्यकालीन कवियों के जीवन एवं रचनाओं के बारे में जान सकेंगे;
- कवियों की काव्य चेतना में व्याप्त एवं दर्शन को जान सकेंगे;
- भारतीय साहित्य के इतिहास में कवियों के योगदान के बारे में जान सकेंगे;

- मध्यकालीन कविता के अन्तर्गत कवियों के महत्व को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

मध्यकाल को हिन्दी साहित्य में स्वर्ण युग माना जाता है क्योंकि इस समय अनेक कवियों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने करने का प्रयास किया। मध्यकालीन कवि सगुण और निर्गुण भक्ति–शाखा में विभाजित थे। निर्गुण भक्ति कवि ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की उपासना करते थे और इन्होंने ईश्वर प्राप्ति का मार्ग ज्ञान और प्रेम बताया। इस आधार पर ये ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखा में विभाजित थे। सगुण भक्ति के अन्तर्गत कवि ईश्वर के साकार रूप को मानकर उपासना करते थे। इस प्रकार ये भी रामभक्ति शाखा और कृष्ण–भक्ति शाखा में विभाजित थे इन कवियों के बारे में संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

5.2 कबीर

निर्गुण ब्रह्म के उपासक कबीरदास जी का जन्म एक परिवार में विधवा ब्रह्मणी के गर्भ से सन् 1455 ई0 में हुआ था। कहा जाता है कि स्वामी रामानन्द के आर्शीवाद से कबीर का जन्म हुआ था। इनके जन्म के सम्बन्ध में दोहा प्रचलित हैः

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ हुए।

जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी तिथि प्रकट भए।।

कबीर की माँ ने लहरतारा में तालाब (काशी से कुछ दूर) के पास फेंक दिया। नीरू एवं नीमा नाम एक जुलाहा दम्पत्ति ने उस बच्चे को उठा लिया और उसका पालन–पोषण किया। इस प्रकार कबीर का जन्म ब्राह्मण परिवार में तथा पालन–पोषण मुस्लिम परिवार में हुआ।

कबीरदास जी ने रामानन्द को अपना गुरू बनाया और उन्हीं से शिक्षा–दीक्षा ग्रहण की। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी थी जिसे पंचमेल की खिचड़ी कहा जाता है इनकी भाषा में सभी भाषा की बोलियाँ सम्मिलित हैं। कबीर के उपदेशों को 'बीजक' नामक ग्रन्थ में संग्रहित किया गया है जिसके मुख्य तीन भाग हैं–साखी, सबद, रमैनी।

कबीर के अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों थे और उन्होंने समुदायों के लोगों को भाईचारे का संदेश दिया। राम और रहीम की एकरूपता और सब मुनष्यों की समानता का संदेश दिया। कबीर के उपदेशों ने भारत में समाचित संस्कृति की नींव को

सुदृढ़ किया। कबीर ने हिन्दू और मुस्लिम के प्रतीकों में भेद मिटाकर इन दोनों में सद्भावना स्थापित करने की राह दिखाईः

काशी काबा एक है, एक है राम रहीम।

मैदा एक पकवान बहु, बैठ कबीरा जीभ।।

कबीर ने मूर्तिपूजा जैसे कर्मकाण्डों पर भी प्रहार किया और निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया। उन्होंने कहाः

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।

ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।

कबीर के समय एक कहावत प्रचलित थी कि जो काशी में मरता है स्वर्ग को जाता है इसलिए कबीर मृत्यु के समय काशी के बाहर मगहर चले गये और सम्वत् 1575 ई0 में उनका स्वर्गवास हो गया मरने पर उनके फूल हिन्दू और मुसलमान दोनों ने आपस में बांट लिए।

5.3 सूरदास

सूरदास जी का जन्म सन् 1478 ई0 में (वैशाख शुरू पंचमी सं0 1535 वि0) में आगरा मथुरा मार्ग पर स्थित रूनकता नामक गांव में हुआ था। कुछ विद्वान दिल्ली के निकट सीही को भी इनका जन्म स्थान मानते हैं। सूरदास जी जन्मान्ध थे, इस विषय पर भी विद्वानों में मतभेद है। इन्होंने कृष्ण की बाल–लीलाओं का, मानव–स्वभाव का एवं प्रकृति का ऐसा सजीव वर्णन किया है, जो आँखों से प्रत्यक्ष देखे बिना सम्भव नहीं है। इन्होंने अपने आप को जन्मान्ध कहा है। ऐसा इन्होंने आत्मग्लानिवश, लाक्षणिक रूप में अथवा ज्ञान–चक्षुओं के आभाव के लिए भी कहा हो सकता है।

सूरदास की रूचि बचपन से ही गायन में थी। इनसे भक्ति का एक पद सुनकर पुष्टिमार्ग के संस्थापक महाप्रभु बल्लभाचार्य ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया और श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन का भार सौंप दिया और सूरदास वहीं भजन कीर्तन करने लगे। सन् 1583 ई0 (सं0 1640 वि0) में सूरदास का देहान्त हो गया। **'स्वजन नैन रूप रस माने'** पद का गायन करते हुए इन्होंने अपने भौतिक शरीर को त्याग दिया।

महाकवि सूरदास की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैंः सूरसागर, सूर–सारावली और साहित्य–लहरी। इनके कारण सूरदास को मध्यकाल का श्रेष्ठ कवि माना जाता है। इनके बारे में एक दोहा प्रचलित हैः

सूर सूर तुलसी ससी, उड्गन केशवदास।

अबके कवि खद्योत सम, जहाँ जहाँ करत प्रकाश।।

5.4 तुलसी

गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म सन् 1532 ई0 (भाद्रपाद, शुक्ल पक्ष एकदशी सम्वत् 1589 वि0) में बांदा जिले के राजापुर गांव में हुआ था। कुछ विद्वान इनका जन्म एटा जिले के 'सोरो' नामक गांव में मानते हैं। तुलसी सरयूपरीण ब्राह्मण थे। इनके पिता आत्माराम दुबे और माता हुलसी ने अभुक्त मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण इन्हें त्याग दिया था। इनका बचपन अनेकानेक कठिनाईयों के बीच बीता।

तुलसी का विवाह दीन बन्धु पाठक की सुन्दर व विदुषी कन्या रत्नावली से हुआ था। इन्हें अपनी पत्नी से अत्याधिक प्रेम था। एक बार पत्नी द्वारा बिना कहे मायके चले जाने पर अर्ध–रात्रि में आँधी–तूफान का सामना करते हुए ये अपनी ससुराल जा पहुँचे। इस पर इनकी पत्नी ने इन्हें फटकार लगाते हुए कहाः

अस्थि चर्म मय देह मम, तामें ऐसी प्राति।

तैसी तो श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति।।

पत्नी की फटकार से तुलसी में भक्ति–भाव जाग गया और वैराग्य धारण कर अनेक तीर्थों का भ्रमण किया। काशी के असी घाट पर सन् 1623 ई0 श्रावण, शुक्ल पक्ष, सप्तमी, सं0 1680 वि. में इनकी पार्थिक लीला का संवरण हुआ। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रचलित है :

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।

श्रावण शुक्ल सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

तुलसी जी द्वारा रचित 12 ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं जिसमें रामचरित मानस प्रमुख हैं। इसके अलावा विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, कृष्ण गीतावली, वरबै रामायण भी प्रमुख हैं।

5.5 मीराबाई

मीराबाई का जन्म सम्वत् 1573 (1516 ई0) विक्रमी में मेड़ता में रत्नसिंह के घर हुआ था। ये बचपन से ही कृष्ण भक्ति में रूचि लेने लगी थीं। मीरा का जन्म राठौर राजपूत परिवार में हुआ था व उनका विवाह मेवाड के सिसोदिया परिवार में हुआ। उदयपुर के महाराजा भोजराज इनके पति थे जो मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र थे। विवाह के कुछ समय बाद ही उनके पति का देहान्त हो गया पति की मृत्यु के बाद उन्हें सती कराने का प्रयास किया गया, किन्तु मीरा इसके लिए तैयार नहीं हुई। वे संसार की ओर से विरकत हो गयी और साधू सन्तों की संगति में कीर्तन करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगीं गुरू रविदास जी को अपना गुरू बनाया और ईश्वर की भक्ति करने लगी। मीरा की भक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती गयी ये मन्दिर में जाकर वहाँ मौजूद कृष्ण भक्तों के समाने कृष्ण जी की मूर्ति के सामने नाचती रहती थीं। मीराबाई का कृष्ण भक्ति में नाचना परिवार वालों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कई बार मीरा को विष देकर मारने की कोशिश की। घरवालों के इस प्रकार के व्यवहार से मीराबाई परेशान हो गई और वे द्वारिका फिर वृन्दावन गई। वह जहाँ जाती थीं वहाँ सम्मान मिलता था। लोग उन्हें देवी के जैसा प्यार और सम्मान देते थे कहा जाता है कि मीरा बहुत दिनों तक वृन्दावन में रहने के बाद द्वारिका चली गईं जहाँ सन् 1557 ई0 में भगवान कृष्ण की मूर्ति में समा गईं।

मीरा ने चार ग्रन्थों की रचना की नरसी का मायरा, गीत गोविन्द टीका, राग गोविन्द, राग सोरठ के पद। इसके अलावा मीराबाई के गीतों का संकलन **'मीरा की पदावली'** नामक ग्रन्थ में किया गया है।

5.6 बिहारी

बिहारीलाल का जन्म संवत् 1595 ई0 (ग्वालियर) में हुआ था। वे जाति के माथुर चौबे (चतुर्वेदी) थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। जब बिहारी आठ वर्ष के थे तब उनके पिता इन्हें ओरछा ले आये तथा उनका बचपन बुंदेलखण्ड में बीता। इनके गुरू नरहरिदास थे। इनके जन्म के बारे में एक दोहा प्रचलित हैः

जन्म ग्वालियर जानिए खण्ड बुंदेले बाल।

तरूणाई आई सुधर मथुरा बसि ससुराल।।

जयपुर नरेश राजा जयसिंह अपनी नयी रानी के प्रेम में इतने डूबे रहते थे कि वे महल से बाहर भी नहीं निकलते थे और राज–काज की ओर ध्यान नहीं देते थे बिहारी ने राजा को सही मार्ग पर लाने के लिए राजा के पास एक दोहा भेजा–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।

अली कली ही सौ बंध्यो, आगे कौन हवाल।।

इस दोहे ने राजा पर मंत्र जैसा कार्य किया। वे रानी के प्रेम से मुक्त होकर पुनः राजकाल संभालने लगे। वे बिहारी की काव्य कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बिहारी से और भी दोहे रचने के लिए कहा और प्रति दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रा देने का वचन दिया इस तरह बिहारी जयपुर नरेश के दरबार में रहकर काव्य रचना करने लगे, वहाँ उन्हें पर्याप्त धन और यश मिला।

बिहारी की एकमात्र रचना **'सतसई'** है। ये मुकतक काव्य है। इसमें 713 दोहे हैं। इसमें ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। सभी दोहे बहुत सुन्दर और सराहनीय हैं। दोहों के बारे में कहा गया है :

सतसइया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।

देखन में छोटे लगें, घाव करै गम्भीर।।

5.7 रहीम

अब्दुल रहीम खानखाना का जन्म संवत 1613 (1556 ई0) में लाहौर में हुआ था। संयोग से उस समय हुमायूँ सिकंदर सूरी का आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सैन्य के लिए लाहौर में मौजूद थे।

रहीम के पिता बैरम खाँ तेरह वर्षीय अकबर के शिक्षक तथा अभिभावक थे। बैरम खाँ खान–ए–खाना की उपाधि से सम्मानित थे। वे हुमायूँ के अन्तरंग मित्र थे। रहीम की माँ वर्तमान हरियाणा प्रान्त के मेवाती राजपूत जमाल खाँ की सुन्दर एवं गुणवती कन्या सुल्तान बेगम थी। जब रहीम पाँच वर्ष के थे, तब गुजराज के पाटननगर में सन् 1561 ई0 में इनके पिता बैरम खाँ की हत्या कर दी गयी। रहीम का पालन पोषण अकबर ने अपने धर्म पुत्र की तरह किया। शाही खानदान की परम्परानुरूप रहीम को मिर्जा खाँ का खिताब दिया गया। रहीम ने बाबा जंबूर की देखरेख में गहन अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर अकबर ने अपनी धाय की बेटी

याहबानो से रहीम का विवाह करा दिया। इसके बाद रहीम ने गुजरात, कुम्भलनेर उदयपुर आदि युद्धों में विजय प्राप्त की। इस पर अकबर ने अपने समय की सर्वोच्च उपाधि **'मीर अर्ज'** से विभूषित किया। सन् 1584 ई0 में अकबर ने रहीम को **'खान–ए–खाना'** की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम का देहान्त 71 वर्ष की आयु में सन् 1626 ई0 में हुआ। रहीम को उनकी इच्छा के अनुसार दिल्ली में ही उनकी पत्नी के मकबरे के पास दफना दिया गया। यह मजार आज भी दिल्ली में मौजूद है। रहीम ने इस मकबरे का निर्माण स्वयं कराया था। रहीम ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही कविता की है जो सरल, स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण है। इनकी भाषा अत्यन्त सरल है आपके काव्य में भक्ति, नीति, प्रेम और श्रंगार का सुन्दर समावेश मिलता है। उनकी प्रमुख रचनाएँ रहीम दोहावली, बरवै, नायिका भेद आदि हैं।

5.8 रसखान

रसखान दिल्ली के प्रसिद्ध पठान थे इनका पूरा नाम सैय्यद इब्राहिम रसखान था इनके द्वारा रचित **'प्रेमवाटिका'** ग्रन्थ से यह संकेत प्राप्त होता है कि ये दिल्ली के राजवंश में उत्पनन हुए थे और इनका रचनाकाल जहाँगीर का राज्यकाल था इनका जन्म सन् 1558 ई0 में (सं0 1615 वि.) के लगभग दिल्ली में हुआ था। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास के अनुसार इनका जन्म सन् 1533 ई0 में पिहानी जिला हरदोई (उ0प्र0) में हुआ था। डॉ0 नगेन्द्र ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनका जन्म 1533 ई0 के आसपास ही स्वीकार किया है। ऐसा माना जाता है कि इन्होंने दिल्ली में कोई विप्लव होता देखा, जिससे व्यथित होकर ये गोवर्धन चले आये और वहाँ आकर श्रीनाथ की शरणागत हुए। इनकी रचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि ये पहले रसिक प्रेमी थे, बाद में आलौकिक प्रेम की ओर आकृष्ट हुए और कृष्ण भक्त बन गये। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने इन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षा प्रदान की थी। इनका अधिकांश जीवन ब्रजभूमि में व्यतीत हुआ। यही कारण है कि कंचन धाम को भी ये वृन्दावन के करील कुंजों पर न्यौछावर करने और अपने अगले जन्मों में ब्रज में शरीर धारण करने की कामना करते थे। कृष्ण भक्त कवि रसखान की मृत्यु 1628 ई0 (सं0 1675 वि0) के लगभग हुई।

रसखान ने दो प्रसिद्ध रचनाएँ लिखीं (1) सुजान रसखान और (2) प्रेमवाटिका। इनमें इन्होंने श्रीकृष्ण को अपना भगवान मानकर स्वयं को उनके प्रति समर्पित किया है।

5.9 केशवदास

आचार्य केशवदास का जन्म 1555 ई0 में औरछा में हुआ था। उनके पिता का नाम काशीनाथ था औरछा के दरबार में उनके परिवार का बड़ा मान–सम्मान था।

केशव स्वयं औरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि थे। इन्द्रजीत सिंह की ओर से इन्हें इक्कीस गांव मिले हुए थे। वे आत्म सम्मान के साथ विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

केशव संस्कृत के विद्वान थे और उनके कुल में भी संस्कृत का ही प्रचार था। नौकर चाकर भी संस्कृत बोलते थे। उनके कुल में भी संस्कृत छोड़ हिन्दी भाषा में कविता करना उन्हें कुछ अपमान जनक लगा।

भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।

तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास।।

संवत 1608 के लगभग जहाँगीर ने औरछा का राज्य वीर सिंह देव को दे दिया। केशवदास कुछ समय तक वीर सिंह देव के दरबार में रहे, फिर गंगा तट पर चले गये और वहीं रहने लगे। 1618 ई0 में उनका देहावसान हो गया।

केशवदास ने अपने काव्य का माध्यम ब्रजभाषा को बनाया उनके द्वारा रचित ग्रन्थ नौ हैं जिन्हें प्रमाणिक माना गया है रसिक प्रिया, कविप्रिया, नखशिख, छंदमाला, रामचन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित, रतनबावनी, विज्ञान गीता और जहाँगीर जस चंद्रिका।

इस प्रकार केशवदास की कृतियों के आधार पर कहा जा सकता है कि केशवदास मध्यकाल के एक श्रेष्ठ कवि थे हिन्दी साहित्य को उनकी कृतियाँ महत्वपूर्ण देन है।

10. सारांश

इस इकाई के अध्ययन बाद स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में अनेक महत्वपूर्ण कवि हुए जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराईयों के खिलाफ़ आवाज उठाई। इनकी रचनाओं से हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण उन्नति हुई। इन कवियों की रचनाओं के कारण मध्ययुग स्वर्ण युग (साहित्य के क्षेत्र में) कहलाता है। मध्यकाल के कवियों में कबीर दास जी का स्थान सर्वोच्च है उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों

समुदायों के लोगों को शिक्षाएं दीं तथा वे मध्यकाल में एक समन्वित संस्कृति के जन्मदाता थे। तुलसीदास जी का **'रामचरितमानस'** भी मध्यकाल की एक श्रेष्ठ रचना है।

5.11 महत्वपूर्ण बिन्दु

- कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और सन्त थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी–निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे।
- कबीर का जन्म संवत 1455 के आसपास माना जाता है।
- इनकी मृत्यु 1575 के आसपास मानी जाती है।
- कबीर के उपदेशों को 'बीजक' नामक ग्रन्थ में संग्रहित किया गया है जिसमें तीन भागः साखी, सबद, रमैनी
- सूरदास का जन्म 1478 ई0 में हुआ था।
- सूरदास की प्रसिद्ध रचनाएं सूरसागर व सूर सारावली हैं।
- सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के कवि थे।
- तुलसीदास की प्रसिद्ध रचना 'रामचरितमानस' है जो अवधी भाषा में लिखी गयी है।
- मीराबाई कृष्ण भक्ति शाखा से सम्बन्धित थीं।
- बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है।
- रहीम अकबर के दरबारी कवि थे जिनका जन्म 1556 ई0 में हुआ था।
- रसखान के दो प्रसिद्ध 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' है।

5.12 शब्दावली

1. काव्य रचना–काव्य में निहित चेतना
2. वैराग्य–हिन्दू, बौद्ध तथा जैन आदि दर्शनों में प्रचलित प्रसिद्ध अवधारणा है जिसका अर्थ संसार की उन वस्तुओं एवं कर्मों से विरत होना है जिसमें सामान्य लोग रहते हैं।
3. विदुषी–ऐसी स्त्री जो विद्वान है। यह शब्द विद्वान का ही स्त्रीलिंग है।
4. विरक्त–भोग विलास से दूर रहना।
5. पुष्टिमार्ग–भक्ति के क्षेत्र में श्री बल्लभाचार्य जी का साधन मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त कबीर का मूल्यांकन कीजिए।
2. सगुण भक्ति धारा के प्रसिद्ध संत सूरदास के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
3. कृष्ण भक्त मीराबाई पर एक लेख लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(1) तुलसीदास (2) रहीम (3) रसखान (4) बिहारी (5) केशवदास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. कबीरदास जी के गुरू का क्या नाम था–

(अ) रामानन्द (ब) बल्लभाचार्य (स) केशवराय (द) गोस्वामी विट्ठलनाथ

2. कौन से प्रसिद्ध कवि जन्मांध थे–

(अ) कबीरदास (ब) रसखान (स) तुलसीदास (द) सूरदास

3. निम्नलिखित में से कौन सा कवि कृष्ण–भक्ति शाखा से सम्बन्धित नहीं हैं–

(अ) मीराबाई (ब) सूरदास (स) रसखान (द) कबीरदास

4. 'प्रेमवाटिका' की रचना किस प्रसिद्ध कवि ने की–

(अ) मीराबाई (ब) केशवदास (स) रसखान (द) सूरदास

5. किसने कहा– ''काशी काबा एक है, एक है राम रहीम

(अ) रहीम (ब) कबीर (स) रसखान (द) मलिक मुहम्मद जायसी

उत्तर – 1–अ, 2–द, 3–द, 4–स, 5–ब

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. M. Raja Gopalachary, K. Damodar Rao : Bhakti Movement and Literature.
2. M.H. Khan : Historians of Medieval India.
3. हरीशचन्द्र वर्मा : मध्यकालीन भारत, भाग–1, 2
4. राजबली पांडे : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, प्रथम भाग।
5. सं0 पांडे : सूफ़ी काव्य मीमांसा।
6. सावित्रि चन्द्र : सूर, तुलसी एवं दादू में समाज और संस्कृति।

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY -119 N

भारत का सांस्कृतिक इतिहास
(1206 ई0–1947 ई0)

खण्ड

द्वितीय – 19वी शताब्दी में सामाजिक सुधार

इकाई– 1 – ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज **259**

इकाई– 2 – रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी, राधास्वामी सत्संग **272**

इकाई– 3 – मुस्लिम सुधार आन्दोलन (देवबन्ध, अलीगढ़– सर सैय्यद एवं इकबाल के विशेष संदर्भ में) **281**

इकाई– 4 – प्रमुख समाज सुधारक **290**

इकाई– 5 – मध्यम वर्ग एवं महिलाओं का उदय **304**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

भारत का सांस्कृतिक इतिहास (1206 ई.–1947 ई.)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड एवं इकाई	सम्पादक
डॉ.ऋषभ कुमार, सहायक आचार्य, इतिहास जी.डी.बिन्नानी पी.जी.कालेज,मिर्जापुर	प्रथम खण्ड 1,2,3,4,5 षष्टम खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.सन्तोषा कुमार आचार्य,इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ.समन जेहरा जैदी सहायक आचार्य, इतिहास जी.एफ.कालेज,शाहजहाँपुर	द्वितीय खण्ड 1,2,3,4,5 तृतीय खण्ड 1,2,3,4,5 पंचम खण्ड 1,2,3,4,5	
डॉ.राम कुमार यादव, सह आचार्य, इतिहास, राजकीय पी.जी.कालेज,सांगीपुर, ,जौनपुर	चतुर्थ खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.अरूप चक्रवर्ती आचार्य (से.नि.)इतिहास विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

मई, 2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN - 978-93-94487-56-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–281003

इकाई प्रथम– ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार के कारण

1.2.1 पाश्चात्य संस्कृति एवं शिक्षा का प्रभाव

1.2.2 ईसाई मिशनरियों का प्रभाव

1.2.3 सुधारकों का प्रभाव

1.2.4 विदेशी सम्पर्क से प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव का ज्ञान

1.2.5 एशियाटिक सोसाइटी के कार्य

1.2.6 समाचार पत्रों एवं पत्र–पत्रिकाओं का योगदान

1.3 सामाजिक सुधार का स्वरूप

1.4 ब्रह्म समाज

1.5 प्रार्थना समाज

1.6 आर्य समाज

1.7 सामाजिक सुधार आन्दोलनों का प्रभाव

1.8 सारांश

1.9 महत्वपूर्ण बिन्दु

1.10 शब्दावली

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि :

- 19वीं शताब्दी में भारतीय समाज की दशा कैसी थी ?
- धर्म और समाज में हुए सुधारों में राजा राम मोहन राय का क्या योगदान रहा ?
- आर्य समाज के उद्देश्यों तथा 19वीं सदी में भारतीय समाज और धर्म में सुधार किये जाने वाले प्रयत्नों में उसका क्या योगदान रहा ?
- भारतीय इतिहास में 19वीं सदी क्यों महत्वपूर्ण है ?

1.1 प्रस्तावना :

19वीं शताब्दी में धार्मिक एवं समाज सुधार आन्दोलन भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित भारतीय संस्कृति ने जिस नवीन विचारधारा को जन्म दिया, जिस प्रकार धर्म और समाज में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया और जिस प्रकार भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में एक नवीन चेतना प्रारम्भ हुई, उस चेतना, भावना और उससे प्रभावित विभिन्न प्रयत्नों को पुनर्जागरण आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।

इस आन्दोलन में सभी धर्म सुधारकों का योगदान रहा। नवशिक्षित लोगों ने बढ़–चढ़कर रूढ़ीवादी सामाजिक रीतियों तथा पुरानी प्रथाओं से विद्रोह किया। वे अब बुद्धिवादी अमानवीय व्यवहारों को और सहने को तैयार न थे। उनका विद्रोह समाजिक समानाता तथा सभी व्यक्तियों की समान क्षमता के मानवतावादी आदर्शों से प्रेरित था। इस आन्दोलन ने भारतीय समाज को उसी प्रकार प्रभावित किया जिस प्रकार 16वीं सदी में हुए पुनर्जागरण ने यूरोप के धर्म, समाज, कला साहित्य आदि को प्रभावित किया था।

1.2 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार के कारण

19वीं शताब्दी के आरम्भ में अनेक ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हुआ जिनके कारण भारत में यह आन्दोलन हुआ। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत की राजनीतिक एकता नष्ट हो गयी थी जिसके बाद अंग्रेजों ने पुनः भारत में राजनीतिक एकता प्रदान की। राजनीतिक एकता से उत्पन्न व्यवस्था और शान्ति ने भारतीयों को अपने बारे में सोचने का अवसर प्रदान किया। इसी समय भारत ने एक बार फिर

विदेशों से सम्पर्क स्थापित किया। ईसाई पादरियों ने भारत में आना प्रारम्भ कर दिया था। संक्षेप में सामाजिक सुधार आन्दोलन के निम्नलिखित कारण थे।

1.2.1 पाश्चात्य संस्कृति एवं शिक्षा का प्रभाव

अंग्रेजी शिक्षा के कारण पश्चिमी देशों से शिक्षित भारतीयों का सम्पर्क हुआ। इस सम्पर्क से भारतवासियों के राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में नयी चेतना आयी। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से भारतीयों का मस्तिष्क तर्कपूर्ण एवं बुद्धियुक्त हो गया उनके विचारों की शिथिलता प्रगति में बदल गया। अतः समाज की कुरीतियों के निराकरण हेतु सुधारवादी आन्दोलन चल पड़े।

1.2.2 ईसाई मिशनरियों का प्रभाव

19वीं शताब्दी के आरम्भ से भारत में ईसाई धर्म के प्रचार का प्रयत्न किया गया। हिन्दु समाज का निम्न वर्ग धन के लोभ में शीघ्र ही बड़ी संख्या में ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगा। अतः ऐसी स्थिति में कट्टर हिन्दुओं की आँखें खुली। उन्हें अपने धर्म का ख्याल आया, अतः उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दु समाज में सुधार लाना आवश्यक है। इस प्रकार ईसाई धर्म प्रचारकों ने अप्रत्यक्ष रूप से धर्म सुधार एवं समाज सुधार की भावना को पैदा किया।

1.2.3 समाज सुधारकों का प्रभाव

19वीं शताब्दी में भारत में अनेक ऐसे धर्म सुधारकों एवं उपासकों का जन्म हुआ, जिन्होंने अपनी वाणी एवं विचारधारा से भारतीय जनता को जाग्रत करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन समाज सुधारकों में राजाराम मोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परहंस, स्वामी विवेकानन्द, केशव सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 19वीं शताब्दी के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का नेतृत्व इन्हीं सुधारकों ने किया।

1.2.4 विदेशी सम्पर्क से प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव का ज्ञान

भारतीयों को विदेशी साहित्य के माध्यम से अपनी प्राचीन संस्कृति की महानता के बारे में ज्ञान हुआ और जब भारतीयों को अपनी संस्कृति की महानता के बारे में ज्ञान हुआ तो उनके मन में आत्महीनता के स्थान पर आत्म–विश्वास की भावनाएँ जाग्रत हुई।

1.2.5 एशियाटिक सोसाइटी के कार्य

1784 में बंगाल में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की गयी। मोनियर विलियम्स, मैक्समूलर जैसे विदेशी विद्वान तथा हरप्रसाद शास्त्री, गोविन्द रानाडे, राजेन्द्र पाल मिश्र एवं आर.जी. भण्डारकर आदि ने एशियाटिक सोसाइटी के प्रकाशन में महत्वपूर्ण कार्य किया। इन विद्वानों ने संस्कृत भाषा के ऐश्वर्य एवं समृद्धि तथा हिन्दु साहित्य का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक मूल्यांकन करके भारतीयों का ध्यान अपने देश के गौरवमय अतीत की ओर आकर्षित किया। इससे भारतीयों को आत्मबल मिला व उनकी आँखे खुल गयीं। भारतीय पुनर्जागरण को इससे भी बड़ा योगदान मिला।

1.2.6 समाचार पत्रों व पत्र–पत्रिकाओं का योगदान

भारतीयों के प्रति ब्रिटिश प्रशासकों का व्यवहार हीनता, शोषण एवं क्रूरता का था। समाचार–पत्रों पत्रिकाओं ने भारतीयों को इसका ज्ञान कराया जिससे भारतीयों में आत्मसम्मान एवं सुरक्षा की भावना जागृत हुई और उन्होंने अपने समाज तथा धर्म की रक्षा के प्रयत्न आरम्भ किये। अतः समाचार पत्र पत्रिकाओं ने भी सुधार आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1.3 सामाजिक सुधार आन्दोलन का स्वरूप

भारत में यूरोपीय प्रभाव एक झंझावत की तरह आया जिसके झंकोरों से भारतीय बौद्धिकता उसी प्रकार सचेष्ट हुई जैसे गंभीर निद्रा में मग्न व्यक्ति खतरे का अनुभव करने जाग उठता है। **'रामधारी सिंह दिनकर'** अपनी पुस्तक **'संस्कृति के चार अध्याय'** में लिखते हैं कि भारत और पश्चिम की इस टकराहट से ''भारत की ऊघती हुई बूढ़ी सभ्यता की नींद खुल गयी और भारतीय सभ्यता का यही जागरण भारत का नवोत्थान था।'' भारत में जो नवोत्थान उठा उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परम्परा एवं अपने विश्वासों का त्याग नहीं, प्रत्युत पश्चिमी सभ्यता की विशिष्टताओं के साथ उनका सामंजस्य बैठाना था। भारत ने अपनी बौद्धिक परम्पराओं में यूरोपीय सभ्यता के मूल्यों को समझकर उसे अपने समन्वय में लाने का प्रयास किया। इसके दो परिणाम हुए एक ओर भारत ने अपनी अतीत की गहराइयों को खोजा, दूसरी ओर यूरोप के प्रभाव से उत्पन्न पुनर्जागरण की रोशनी में अपनी संस्कृति को पुनः संजोने और संवारने की कोशिश की।

अतीत के आधार पर समन्वयवादी विकास भारतीय नवजागरण का प्रधान लक्षण था। भारतीय नवजागरण के उत्तेजक बाहरी थे इसी कारण समाज सुधार आन्दोलन क्रान्तिकारी न होकर विकासशील रहा। 19वीं और 20वीं सदी में केवल ऐसे सुधारों की मांग की गई, जिनके द्वारा नवीन परिस्थितियों के अनुसार समाज भी प्रगतिशील बनाया जा सके। किसी भी समाज सुधारक या धर्म सुधारक ने परम्परागत व्यवस्था में अमूल परिवर्तन करके किसी नये समाज की संरचना की मांग नहीं की।

19वीं सदी के आरम्भिक दशकों में व्यक्तिगत विद्रोह द्वारा समाज का स्वरूप बदलने की कोशिश की गयी। इनमें कबीर, नानक, दादू, नामदेव आदि सन्तों ने मध्य काल में धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रीति रिवाजों के विरूद्ध आवाज उठाई थी। कुछ इसी प्रकार के सुधारक 19वीं सदी में भी सामने आये। ये सुधारक मध्यकाल के सन्तों से अलग थे, इनकी आवाज अलग थी। फिर भी इनकी आवाज को सुना गया और सभी सामाजिक विद्रोहियों को समाज सुधारक ही माना गया।

1.4 ब्रह्म समाज

ब्रह्म समाज की स्थापना 20 अगस्त 1828 को राजा राममोहन ने कलकत्ता में की। इसकी स्थापना का उद्देश्य धर्म और समाज का सुधार करना था। हिन्दु धर्म की कोई भी ऐसी कुरीति न थी जिस पर उसने प्रहार न किया हो। ब्रह्म समाज ने सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जाति प्रथा, अस्पृश्यता, नशा आदि सभी कुरीतियों का विरोध किया। इसके साथ समाज सुधार के लिए स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि क्रियात्मक कार्य भी ब्रह्म समाज ने किये।

अपने धार्मिक तथा सामाजिक विचारों को फैलाने के लिए ब्रह्म समाज ने आधुनिक समय के सभी साधनों का प्रयोग किया था। विभिन्न समाजों की स्थापना, भाषण, लेख, समाचार पत्र पत्रिकाएं, स्कूल, कालेज आदि की स्थापना, धार्मिक, वाद–विवाद आदि सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग ब्रह्म समाज ने किया। ब्रह्म समाज ने अपने कार्यक्रमों के लिए जिन सिद्धान्तों को आधार बनाया, वे निम्नलिखित थे :

(i) परमात्मा एक है तथा वह सम्पूर्ण सदगुणों का केन्द्र व भण्डार है।

(ii) परमात्मा सृष्टि का रचयिता और संरक्षक है।

(iii) वह निराकार शाश्वत, आदृश्य और सत्य है तथा वह न कभी जन्म लेता और न ही देह धारण करता है।

(iv) ईश्वर की पूजा सबके लिए है। उसमें वर्ण अथवा जाति सम्बन्ध का विभेद नहीं है। ईश्वर पूजा, सन्यास, मूर्तिपूजा एवं कर्मकाण्ड के द्वारा नहीं बल्कि आध्यात्मिक रूप से की जानी चाहिए धर्म का बाह्य आडम्बर से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(v) परमात्मा की पूजा शुद्ध मन से करनी चाहिए, लेकिन मूर्ति पूजा नहीं करनी चाहिए।

(vi) मनुष्य को पाप का त्यागकर सभी धर्मों से सत्य को ग्रहण करना चाहिए।

(vii) किसी भी पुस्तक को दैवीय नहीं मानना चाहिए क्योंकि कोई भी पुस्तक त्रुटि रहित नहीं होती है।

(viii) ईश्वर पापियों एवं पुण्यत्माओं को उनके कार्यों के अनुसार फल देता है।

(ix) मनुष्य को परोपकार और पवित्रता द्वारा ईश्वर की भक्ति में लीन हो जाना चाहिए।

ब्रह्म समाज ने निम्नलिखित सामाजिक सुधारों की ओर ध्यान दिलाया :

(i) समाज में प्रचलित जाति भेदभाव का उन्मूलन करना।

(ii) बाल विवाह, बहु विवाह तथा बाल हत्या का अन्त,

(iii) विधवा विवाह का प्रचलन करना,

(iv) छुआछूत का अन्त करना,

(v) अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता का अन्त करना।

इस प्रकार, ब्रह्म समाज ने समाज सुधार और आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसने पहली बार भारतीय समाज की आवश्यकताओं और समस्याओं को भारतीयों के सम्मुख रखा तथा बौद्धिक जागृति की ओर एक साहसिक कदम उठाया जिससे आगे आने वाले सुधारकों को सहायता प्राप्त हुई। **डॉ. जकारिया** ने लिखा है, ''राममोहन राय और उनका ब्रहम–समाज हिन्दु धर्म, समाज और राजनीति में उन सभी सुधार–आन्दोलनों को आरम्भ करने वाले थे जिन्होंने पिछले सौ वर्षों में

भारत ने उत्तेजना पैदा की और जिन्होंने हमारे समय में उसके अद्वितीय पुनर्जागरण को जन्म दिया।''

1.5 प्रार्थना समाज

महाराष्ट्र में सन् 1919 में प्रार्थना सभा नामक एक आस्तिक समाज की स्थापना की गयी इसका प्रभाव सीमित था और यह शीघ्र ही छिन्न–भिन्न हो गया। इसके बाद सन् 1867 में एक अन्य महत्वपूर्ण आस्तिक संस्था प्रार्थना समाज का निर्माण हुआ इसके प्रमुख उद्देश्य थे :

(i) विवेकपूर्ण उपासना करना;

(ii) जाति प्रथा को अस्वीकार करना;

(iii) विधवा विवाह का प्रचार करना;

(iv) स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देना;

(v) बाल विवाह का वहिष्कार करना; एवं

(vi) अन्य सामाजिक सुधार करना।

प्रार्थना समाज ने राज राममोहन राय द्वारा बंगाल में स्थापित ब्रहम–समाज से प्रेरणा गृहण की और व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के सुधार के लिए अपनी सारी शक्ति धार्मिक शिक्षा के प्रचार में अर्पित कर दी। प्रार्थना समाज के प्रमुख प्रकाश स्तम्भों में आत्माराम पाण्डूरंग, वासुदेव बाबा जी नौरंगे, रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, महादेव गोविन्द रानाडे प्रमुख थे। प्रार्थना समाज के आलोचकों द्वारा किये गये असत्य प्रचार को मिटाने के लिए इन नेताओं को बहुत संघर्ष करना पड़ा। असत्य प्रचार के अंतर्गत यह कहा जाता था कि प्रार्थना समाज ईसाई धर्म के अनुकरण पर आधारित है और यह देश के प्राचीन धर्म के विरूद्ध है। प्रार्थना समाज ने रानाडे के नेतृत्व में जाति प्रथा, बाल विवाह, मूर्ति पूजा तथा हिन्दू समाज की अन्य कुरीतियों के विरूद्ध आन्दोलन किया। उसने 19वी सदी के नवें दशक में नारी जागरण की योजनाओं का आरम्भ किया। आर्य–महिला–समाज की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों का फल है।

1878 में प्रार्थना समाज द्वारा स्थापित पहला रात्रि विद्यालय जन शिक्षा और प्रौण–शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहा। वासुदेव बाबाजी नौरंगे बालकाश्रम की स्थापना

लालाशंकर, उमाशंकर द्वारा पंढरपुर में 1875 ई. में हुई। यह बालकाश्रम बाद में प्रार्थना समाज के संरक्षण में आ गया। ''दि डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसाइटी आफ इण्डिया'' नामक संस्था, जो अछूतोद्धार के लिए प्रसिद्ध है, प्रार्थना समाज के एक कार्यकर्ता द्वारा बिट्ठल रामजी शिन्दे द्वारा स्थापित हुई।

प्रार्थना समाज कुछ नियमों सिद्धान्तों पर आधारित था जो निम्नलिखित है :

(i) ईश्वर ही इस ब्रह्मांड का रचियता है–

(ii) ईश्वर अवतार नहीं लेता और कोई ऐसी पुस्तक नहीं जिसे ईश्वर ने लिखा हो, अथवा जो पूर्णतः दोष–रहित हो।

(iii) ईश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है

उपर्युक्त नियमों व सिद्धान्तों के आधार पर ही प्रार्थना समाज आधारित था। इन सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करना तथा समाज सुधार करना प्रार्थना समाज का मुख्य लक्ष्य था।

1.6 आर्य समाज

आर्य समाज आन्दोलन का प्रसार प्रायः पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ यह आन्दोलन केवल रूप में ही पुनरूत्थान था न कि तत्वों में। यह स्मरण रहे कि न तो स्वामी दयानन्द और न ही उनके गुरू स्वामी विरजानन्द पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित हुए थे ये दोनों ही शुद्ध वैदिक परम्परा में विश्वास करते थे उन्होंने पुनः 'वेद की ओर चलो' (Back to the Vedas) का नारा लगाया। उत्तर वैदिक काल से आज तक सभी अन्य मतमतान्तरों को उन्होंने पाखण्ड अथवा झूठे धर्म की संज्ञा दी।

1824 में जन्में दयानन्द सरस्वती ने 1875 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की पुनः स्थापना करना था जो झूठे धार्मिक विश्वास तथा कुरीतियां कालान्तर में हिन्दू समाज में आ गई थीं उन्हें उन्होनें जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रण किया। 1877 में आर्य समाज लाहौर की स्थापना हुई जिसके उपरान्त आर्य समाज का अधिक प्रचार हुआ। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य था कि भारत की धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय रूप से एक कर दिया जाए। उनकी इच्छा थी कि आर्य धर्म ही देश का समान धर्म हो उन्हें समकालीन हिन्दू धर्म तथा समाज में

अनेक त्रुटियां देखने को मिलीं। उन्होंने इन दोनों क्षेत्रों में जीवन पर्यन्त अथक कार्य किया।

आर्य समाज के सिद्धान्त तथा नियम 1875 में ही गठित किये गये जिन्हें 1877 में पुनः लाहौर में सम्पादित कर निश्चित रूप दिया गया। वे नियम निम्नलिखित हैं।

(i) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(ii) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार सर्वशक्तिमान न्यायकारी, दयालू अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।

(iii) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

(iv) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(v) सब काम धर्मानुसार करने चाहिए।

(vi) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है।

(vii) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार व्यवहार करना चाहिए।

(viii) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(ix) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(x) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वाहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर आर्य समाज ने हिन्दू धर्म और समाज सुधार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये। स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के निर्माण में समानता की भावना को सम्मिलित किया, जोकि विभिन्न समाजों के संगठन और उनके प्रचार–कार्य में सहायक सिद्ध हुआ।

1.7 सुधार आन्दोलनों का प्रभाव

19वीं शताब्दी के भारत में होने वाले सुधार आन्दोलनों के प्रभाव को निम्नलिखित रूप से इंगित किया जा सकता है।

(i) 19वीं शताब्दी का धर्मसुधार आन्दोलन केवल धर्म तक ही सीमित नहीं थे, वरन् समाज सुधार भी इन आन्दोलनों का मुख्य लक्ष्य था धर्म सुधार आन्दोलनों के समर्थकों ने समाज में व्याप्त जाति प्रथा, बाल–विवाह प्रथा, अस्पृष्यता आदि सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया तथा स्त्री शिक्षा, स्त्री अधिकार, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह आदि का समर्थन किया।

(ii) इन आन्दोलनों ने जनसाधारण में राष्ट्रीय चेतना जागृत की। पुनर्जागरण की भावना से भारतीयों में सांस्कृतिक एकता तथा राष्ट्रीय गौरव का निर्माण हुआ जिससे **'भारत महान राष्ट्र है'** की भावना को प्रोत्साहन मिला।

(iii) पुनर्जागरण से वैज्ञानिक एवं अनुसंधान की भावना का विकास हुआ। 1784 में 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' की स्थापना हुई थी इसके बाद भारतीय पुरातत्व विभाग की स्थापना हुई। तत्पश्चात विभिन्न स्थानों पर अजायबघरों की स्थापना की गयी जिससे प्राचीन स्मारकों एवं स्थलों की खोज की गयी।

(iv) भारतीय पुनर्जागरण की एक महत्वपूर्ण भावना भारत के गौरवमय अतीत की खोज करना था। इस क्षेत्र में यूरोपीय विद्वानों ने निःस्वार्थ भाव से कार्य किया तथा भारतीयों ने भी अपने प्राचीन गौरव की खोज करनी आरम्भ कर दी।

(v) हिन्दू धर्मग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया और उसकी महानता को स्पष्ट करके हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ धर्म प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन धार्मिक आन्दोलनों ने हिन्दू धर्म को उसके दोषों से मुक्त किया गया और उसके सत्य सिद्धान्तों को खोज निकाला। इन्हीं आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप ही हिन्दू धर्म सम्पूर्ण संसार को अध्यात्म का संदेश दे सका।

1.8 सारांश

इस प्रकार ब्रह्म समाज ने समाज सुधार, धर्म सुधार तथा आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसने पहली बार भारतीय समाज की आवश्यकताओं और समस्याओं को भारतीयों के सम्मुख रखा तथा बौद्धिक जागृति की

ओर साहसिक कदम उठाया जिसमें आगे आने वाले सुधारकों को सहायता प्राप्त हुई। धीरे–धीरे भारतीय तथा भारतीय धर्म सुधारक पश्चिमी सभ्यता से प्रेरणा लेना भूल गये और उन्होंने अपनी प्रेरणा का आधार भारतीय संस्कृति और धर्म को बनाया। इससे भारत में और भी अधिक उग्रवादी धर्म एवं समाज सुधारक हुए जिनकी पृष्ठिभूमि का निर्माण भारतीय धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता ने किया। ब्रहम समाज का कार्य इन कार्यों को आरम्भ करने का था। पश्चिमी सभ्यता से उसे प्रेरणा प्राप्त हुई। इस कारण वह उसके प्रति अपनी श्रद्धा न छोड़ सका। परन्तु उसके पश्चात आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन को इसकी आवश्यकता नहीं रह गयी। भारतीय व्यक्तित्व निखर गया और उसमें पश्चिमी सभ्यता एवं धर्म से टक्कर लेने का साहस और आत्मविश्वास आ गया इस कारण आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन शुद्ध भारतीय आन्दोलन हुए। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्म समाज ने इसकी आधारशिला का निर्माण किया। उसने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था जिससे भारतीय इस साहसपूर्ण क़दम को उठा सके।

1.9 महत्वपूर्ण बिन्दु

- सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों की बदौलत भारतीय लोगों की धारणा में जो परिवर्तन आए, उन्हें ही पुनर्जागरण की संज्ञा दी गयी।
- राजाराम मोहन राय प्रथम भारतीय थे जिन्होंने सबसे पहले भारतीय समाज में व्याप्त मध्ययुगीन बुराइयों के विरोध में आन्दोलन चलाया।
- 1828 ई0 में इन्होंने कलकत्ता में ब्रहम समाज की स्थापना की।
- इन्हीं के सहयोग से 1828 ई0 में एक सरकारी कानून बनाया गया और सती प्रथा का पूर्णरूप से अन्त कर दिया गया।
- राजाराम मोहन राय को 'नवीन भारत का अग्रदूत' एवं 'पुनर्जागरण के पिता' की संज्ञा दी जाती है।
- पुनर्जागरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि प्राचीन भारत का विस्तृत इतिहास एवं गौरव आम जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जा सका।
- आर्य समाज की स्थापना 1875 ई0 में बम्बई में हुई। इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'वेदो की ओर लौटो' नारा दिया तथा मूर्ति पूजा का विरोध किया।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की।

- केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से एक प्रार्थना समाज नामक संस्था की स्थापना 1867 में की गयी।
- प्रार्थना समाज की बैठक प्रत्येक रविवार को होती थी।
- सन् 1883 ई0 में दयानन्द सरस्वती की अजमेरी में मृत्यु हो गयी।

1.10 शब्दावली

1. **पुनर्जागरण–** फिर से जागृत होने की क्रिया या सोये हुए का फिर से जागना।
2. **पाश्चात्य संस्कृति –** पश्चिमी देशों की संस्कृति
3. **पाश्चात्य सभ्यता –** पश्चिमी देशों की सभ्यता
4. **सती –** एक प्राचीन भारतीय प्रथा जिसके अनुसार स्त्री को अपने पति की मृत्यु होने पर उसकी चिता के साथ जलना पड़ता था तथा वह अपने पति की चिता के साथ ही जलकर अपने प्राण त्याग देती थी।
5. **आध्यात्मिक –** भौतिकता से परे।

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 19वीं शताब्दी में भारतीय धर्म और समाज में हुए सुधारों में ब्रह्म समाज का क्या योगदान रहा?
2. प्रार्थना समाज के कार्यों पर प्रकाश डालिये।
3. आर्य समाज के प्रमुख सिद्धान्त एवं योगदान की विवेचना कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आन्दोलन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. ब्रह्म समाज के उद्देश्यों और कार्यों पर टिप्पणी कीजिए।
3. आर्य समाज के प्रमुख सिद्धान्त क्या थे ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय पुनर्जागरण का जनक कहा जाता है –

   (अ) स्वामी विवेकानन्द (ब) दयानन्द सरस्वती

   (स) राजाराम मोहन राय (द) रामकृष्ण परमहंस

2. ब्रह्म समाज की स्थापना कब हुई –

(अ) 1820 (ब) 1828 (स) 1830 (द) 1835

3. प्रार्थना समाज की स्थापना किसके द्वारा की गयी –

(अ) केशवचन्द्र सेन (ब) दयानन्द सरस्वती

(स) एम0जी0 रानाडे (द) आत्माराम पाण्डुरंग

4. आर्य समाज की स्थापना कब हुई

(अ) 1875 (ब) 1828 (स) 1870 (स) 1880

उत्तर – 1 (स), 2 (ब), 3 (द), 4 (अ)

इकाई द्वितीय – रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी, राधास्वामी सत्संग

इकाई की रूपरेखा :

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 रामकृष्ण मिशन

2.3 थियोसोफिकल सोसाइटी

2.4 राधास्वामी सत्संग

2.5 सारांश

2.6 महत्वपूर्ण बिन्दु

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि :

- धर्म एवं समाज सुधार में रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी और राधास्वामी सत्संग की क्या भूमिका रही ?
- इन संस्थाओं की स्थापना के पीछे संस्थापकों के क्या उद्देश्य रहे थे ?
- भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को इनकी क्या देन है ?
- इन संस्थाओं के संस्थापकों के बारे में जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना :

ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसी संस्थाओं की स्थापना के बाद भारतीय जन मानस में जाग्रति पैदा हुई और इसके बाद धर्म एवं समाज सुधार हेतु नवशिक्षित

भारतीयों ने अनेक संस्थाओं की स्थापना की जिसमें रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी और राधास्वामी सत्संग महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन संस्थाओं ने भारत को पश्चिमी सभ्यता का अंग बनने से रोका भारतीयों में आत्मगौरव और आत्मविश्वास उत्पन्न किया, परम्परागत धर्म और समाज में विभिन्न परिवर्तन किया तथा एक नवीन भारत का निर्माण किया।

2.2 रामकृष्ण–मिशन

रामकृष्ण मठ की स्थापना 1887 ई0 में स्वामी रामकृष्ण के शिष्य विवेकानन्द ने वारानगर में की। एक मठ 1899 में वैल्लोर में स्थापित किया जो आज भी सम्पूर्ण भारत में फैले हुए मठों का केन्द्र स्थल है। मठों के द्वारा रामकृष्ण मिशन का संगठन और प्रचार स्वामी विवेकानन्द ने किया उनकी मृत्यु के पश्चात 1909 ई0 में इसके प्रचार कार्य हेतु रामकृष्ण मिशन के नाम से एक समुदाय को पंजीकृत भी करा लिया गया।

वैल्लोर का रामकृष्ण मठ सन्यासियों को अन्य मठों का संगठन करने और धर्म प्रचार की शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षालय की भाँति कार्य करता है। रामकृष्ण मिशन के सदस्य, जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जीवन भर धर्म प्रचार की शपथ लेते हैं, इस मठ या अन्य मठों में निवास करते हैं। कोई भी वह व्यक्ति मिशन का साधारण सदस्य हो सकता है जो मिशन के सिद्धान्तों में विश्वास करता हो। रामकृष्ण मिशन का संगठन रामकृष्ण मठ से अलग है। मिशन समाज सेवा का कार्य करता है भूचाल अकाल आदि के समय पर मिशन लोकसेवा का कार्य भी करता है इसके अलावा स्थायी रूप से मिशन ने विभिन्न स्थानों पर कालेज हास्टल आदि स्थापित किये हैं।

रामकृष्ण के विचारों को 'रामकृष्ण मिशन' के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द ने प्रचारित किया। विवेकानन्द उदार हिन्दू धर्म और अध्यात्मवाद की सजीव आत्मा थे हिन्दू अध्यात्मवाद का सहारा लेकर उन्होंने जिस प्रकार हिन्दू धर्म, समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दिया वह अद्वितीय है। यही नहीं बल्कि सभी धर्मों की समानता और मनुष्य मात्र की सेवा का आधार लेकर जो सन्देश उन्होंने पश्चिमी राष्ट्रों को दिया वह अद्वितीय है उन्होंने हिन्दू धर्म के अध्यात्मवाद को पुनर्जन्म दिया। और एक बार फिर हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करके इस्लाम और ईसाई धर्म के प्रहारों से उनकी रक्षा की। उनके उपदेशों से हिन्दुओं को केवल अपने धर्म और सभ्यता के प्राचीन गौरव और हिन्दू धर्म की श्रेष्ठ अध्यात्मवाद की भावना का ही पता नहीं लगा अपितु उन्हें यह भी ज्ञात हुआ की वे पतन के किस स्तर पर पहुँच चुके थे। स्वामी विवेकानन्द ने

सम्पूर्ण संसार में अध्यात्मवाद के महत्व को बढ़ाया वे धर्म को ''देवत्व जो स्वतः मनुष्य में है'' मानते थे। विवेकानन्द ने यह विश्वास व्यक्त किया कि भारतीय जीवन का मूल आधार धर्म था। उनका मत था कि धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं को तभी मानना चाहिए जब वे उचित जान पड़े।

स्वामी विवेकानन्द सभी धर्मों की एकता में विश्वास करते थे और उन्होंने सर्वदा धार्मिक उदारता समानता और सहयोग पर बल दिया। उन्होंने कहा, सहायता करो लड़ो नहीं; एक दूसरे से ग्रहण करो, विनाश नहीं; मेल और शान्ति, विरोध नहीं।'' स्वामी विवेकानन्द के धर्म में मानव समाज की सेवा का महत्वपूर्ण स्थान था। वे शिक्षा, स्त्री पुनरूद्धार और आर्थिक प्रगति के पक्षधर थे। निर्धनता, अशिक्षा, अन्धविश्वास और रूढ़ीवादिता पर उन्होंने कठोर प्रहार किये। वह मानव सेवा को धर्म का प्रमुख अंग मानते थे। उन्होंने कहा थाः 'ईश्वर विभिन्न शक्लों में तुम्हारे सामने है। जो ईश्वर के बच्चों से प्यार करता है वह ईश्वर की सेवा करता है।'' उन्होंने एक पत्र में लिखा : ''ईश्वर की खोज में एक व्यक्ति को कहाँ जाना चाहिए ? क्या निर्धन, असहाय और निर्बल ईश्वर नहीं है। उन्होंने अपने एक साथी को लिखा थाः ''निर्धन, अज्ञानी, अशिक्षित और असहाय को अपना ईश्वर मानों। इनकी सेवा करना ही महान धर्म है।''

स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्रीयता के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया उनके राष्ट्रीयता के योगदान के विषय में एक इतिहासकार ने लिखा है, ''स्वामी विवेकानन्द को आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता का जनक पुकारा जा सकता है। उन्होंने बहुत कुछ अंशों में उसका निर्माण किया और साथ ही अपने जीवन में उसके श्रेष्ठतम और उच्चतम आदर्शो को आत्मसात् किया।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द और उनके संगठन रामकृष्ण मिशन ने हिन्दू धर्म, संस्कृति, सभ्यता और गौरव, समाज और राष्ट्रीयता के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। इस कारण रामकृष्ण मिशन भारतीय पुनरूद्धार आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया और आधुनिक समय में वह विभिन्न क्षेत्रों में भारत की सेवा कर रहा है।

2.3 थियोसोफिकल समाज

थियोसोफिकल (Theosophy) शब्द ग्रीक भाषा के Theop (The God) और Sophia (Wisdom) शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ **'ईश्वर का ज्ञान'** है। संस्कृत में इसके लिए **'ब्रह्म विद्या'** शब्द का प्रयोग होता है। थियोसोफी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम तीसरी सदी में एलेकलेण्ड्रिया के ग्रीक विद्वान इम्बीकस ने किया था। उसने

इस शब्द का प्रयोग ईश्वरीय ज्ञान के लिए किया था। आधुनिक समय में इस शब्द का प्रयोग **थियोसोफिकल समाज** ने किया जिसकी स्थापना 1875 ई0 में मैडम हेलन पेट्रोवना ब्लेवट्स्की (Madam H.P. Blavatasky) (1831–91) और कर्नल एच.एस. ऑल्कॉट (H.S. Olcott) (1832–97) ने की। 1892 ई0 में मद्रास के निकट अड्यार (Adyar) नामक स्थान पर इसकी एक शाखा स्थापित की गयी।

थियोसोफी आन्दोलन एक प्रकार से अध्यात्म विद्या अथवा ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया थां। अध्यात्मिक शक्तियों एवं आत्माओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य था। किन्तु भारत में इस संस्था का उद्देश्य बदल गया। भारत में यह संस्था सांस्कृतिक नवोत्थान की प्रक्रिया में वह आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक आन्दोलन का माध्यम बन गई। यह संस्था सभी धर्मों को समानभाव से देखती थी फिर भी इसका झुकाव हिन्दुत्व और बौद्ध धर्म की ओर बना रहा। भारत में मिसेज ऐनी बेसेण्ट (1910 से 1933) ई0 तक इसकी अध्यक्षा बनी रहीं जो एक आयरिश महिला थी। थियोसोफिकल समाज के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :

(i) भ्रात–भाव की भावना से सभी मनुष्यों के संगठन की स्थापना करना।

(ii) प्राचीन धर्म, दर्शन और विज्ञान के अध्ययन में सहयोग देना जो संसार में कहीं भी पाया जा सकता है।

(iii) प्रकृति के नियमों की खोज तथा मनुष्य की दैवीय शक्तियों का विकास। मुख्यतः ब्राह्मण और बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों ने थियोसोफिकल समाज के दर्शन और सिद्धान्तों को जन्म दिया था। सभी मनुष्यों को समान और भाई मानने का सिद्धान्त हिन्दू–दर्शन से लिया गया था, जो यह विश्वास करता है कि सभी मनुष्य ईश्वर का अंग हैं।

प्राचीन धर्म और दर्शन का अध्ययन इस धारणा पर आधारित था कि विभिन्न धर्म वास्तव में प्राचीन ज्ञान (Ancient wisdom) के ही विभिन्न स्वरूप हैं। इस कारण सत्य की खोज के लिए आवश्यक है कि विभिन्न व्यक्तियों के दर्शन और धर्मों का अध्ययन किया जाए। उसने प्रकृति के नियमों को खोजना और मनुष्य की दैवी–शक्तियों के विकास की निम्नलिखित मुख्य बातें बतायी :

(i) ब्रह्म की कल्पना, जिससे सभी व्यक्तियों की उत्पत्ति होती है और जो सभी मनुष्यों में निवास करता है।

(ii) धर्म के विभिन्न स्वरूप हैं परन्तु वे भी ब्रह्म के अंग हैं।

(iii) ब्रह्म की देखभाल में उसके बड़े बच्चें जिन्हें सन्त, दार्शनिक, महात्मा, देवता आदि पुकारते हैं, संसार का शासन करते हैं।

(iv) मनुष्य अपने कर्मानुसार धीरे–धीरे प्रयत्न करते हुए निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

(v) विभिन्न जातियों का जन्म ईश्वर मनुष्य के विभिन्न गुणों के विकास के लिए करता है।

(vi) मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है परन्तु निर्वाण प्राप्ति का अर्थ कर्मों की सयाद्रि न होकर आत्मज्ञान है।

(vii) स्त्री और पुरूष समान है क्योंकि आत्मा कभी पुरूष शरीर में जन्म लेती है तो कभी स्त्री–शरीर में।

(viii) संसार में जो कुछ भी होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है।

(ix) मनुष्यों को पशुओं के प्रति दया का भाव रखना चाहिए।

(x) सभी धर्मों का महत्व है क्योंकि प्रत्येक धर्म किसी न किसी प्रकार मनुष्य को निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बताता है।

(xi) व्यक्तियों को सिर्फ अपने निर्वाण का प्रयत्न नहीं करना चाहिए बल्कि इस कार्य में सभी मनुष्यों की सहायता करनी चाहिए।

(xii) समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें सन्यासी, सन्त या महात्मा पुकारते हैं और जो मनुष्यों को निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बताते है। उनका स्थान समाज में श्रेष्ठ होता है और मनुष्यों को उनके उपदेशों को सुनना चाहिए तथा उनके ज्ञान का अध्ययन करना चाहिए।

प्रारम्भ में थियोसोफिकल समाज ने भारतीय शिक्षित वर्ग को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने इस समाज को अधिक लोकप्रिय बनाया। भारत की राष्ट्रीय जागृति में इस संस्था की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

2.4 राधास्वामी सत्संग

राधास्वामी सत्संग की स्थापना सन् 1861 में शिवदयाल जी (1818–78) ने आगरा में की थी। इस संस्था के छठे गुरू स्वामी आनन्दस्वरूप के समय में इसने आश्चर्यजनक प्रगति की और दयालबाग नामक एक उन्नतिशील और औद्योगिक कालोनी की स्थापना की। राधास्वामी स्वयं ईश्वर का नाम है और वे स्वंय पृथ्वी पर आवरित हुए थे एवं इन्होंने अपना नाम सन्त सतगुरू बतलाया। इस प्रकार राधास्वामी सत्संग के गुरू ईश्वर के अवतार माने जाते हैं और इसी से संस्था में गुरूभक्ति की प्रधानता है। इस संस्था के अनुयायी बिना किसी जात–पात व भेद–भाव के ईश्वर की आराधना करते हैं ये ईश्वर संसार व जीवात्मा को सत्य मानते हैं। कबीर, दादू, नानक आदि सन्तों की वाणियाँ इनके धार्मिक ग्रन्थ हैं। वास्तव में, यह सभी धर्मों को समान मानते हैं तथा प्रेम व भ्रातत्व का प्रचार करते हैं।

संक्षेप में, राधास्वामी सत्संग भक्ति–मार्ग व योग–मार्ग का एक मिश्रण हैं इस संस्था ने धार्मिक जागृति के साथ औद्योगिक प्रगति कर, जाति के प्रतिबन्धों का बहिष्कार कर और शिक्षा का प्रचार कर सांस्कृतिक जागरण और राष्ट्रनिर्माण के कार्य में बहुमूल्य योग दिया है।

2.5 सारांश

संक्षेप में, 19वीं सदी में जो समाज–सुधार प्रारम्भ हुआ उसमें इन संस्थाओं (रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी और राधास्वामी सत्संग) का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन संस्थाओं ने सामाजिक चेतना को जाग्रत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संस्थाओं द्वारा समाज सुधार हेतु किये गये कार्यों के फलस्वरूप भारतीय समाज में नई चेतना आयी। इन संस्थाओं ने हिन्दू धर्म को उसके दोषों से मुक्त किया और उसके सत्य सिद्धान्तों को खोज निकाला। कर्मकाण्डों एवं अनुपयुक्त क्रियाओं से मुक्त करके उसे शक्तिशाली बनाया जिससे वह साहसपूर्वक अन्य धर्मों का मुकाबला करने के लिए तत्पर हो गया।

2.6 महत्वपूर्ण बिन्दु

- स्वामी विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता के हुगली गाँव में 1863 ई0 में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था।

- स्वामी विवेकानन्द के गुरू रामकृष्ण परमहंस थे जिनका असली नाम गदाधर था।
- विवेकानन्द ने वारानगर में 1887 में रामकृष्ण मठ की स्थापना की।
- स्वामी विवेकानन्द ने 1893 में अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में जाने से पूर्व खेतड़ी के महाराजा के सुझाव पर इनका नाम स्वामी विवेकानन्द रखा गया।
- स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु अल्पायु में ही 1902 ई0 में हो गयी।
- थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना 1875 ई0 में मैडम हैलीना ब्लावाट्स्की और इंग्लैण्ड के एक भूतपूर्व सैनिक एच.एस. आल्काट ने अमेरिका में की थी।
- भारत में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना 1886 ई0 में मद्रास के निकट अड़यार में की गयी।
- आल्काट की मृत्यु के बाद 1907 ई0 में एनीबेसेंट थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्ष बनी।
- थियोसोफिकल सोसाइटी का पुनर्जन्म मोक्ष और निर्वाण में विश्वास था। होमरूल लीग की स्थापना करके ऐनीबेसेंट ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नया मोड़ दिया।
- ऐनीबेसेंट ने बनारस में (1889 ई0 में) हिन्दू स्कूल की स्थापना की जिसे 1915 में मदनमोहन मालवीय ने हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप दिया।
- राधास्वामी सत्संग की स्थापना शिवदयाल सिंह ने 1867 में आगरा में की।
- शिवदयाल सिंह का जन्म आगरा में खत्री परिवार में 1818 ई0 में हुआ था।
- स्वामी महाराज की जीवन लीला 1878 में समाप्त हुई।
- आगरा से तीन मील दूर स्वामी बाग में उनकी समाधि बनाई गई।

2.7 शब्दावली

(i) **पुनर्जन्म** – दूबारा जन्म लेना।

(ii) **रूढ़िवादिता** – एक ऐसी विचाराधारा जो पारम्परिक मान्यताओं का अनुकरण तार्किक या वैज्ञानिकता के स्थान पर आस्था के आधार पर करना अथवा चिरकाल से प्रचलित मान्यताओं के प्रति सम्मान।

(iii) **निर्वाण** – निर्वाण का अर्थ मुक्ति पाना अर्थात लोभ, घृणा आदि से मुक्ति।

(iv) **आत्मज्ञान** – मन के भीतर की जागरूकता।

(v) **रूढिवादिता** – चिरकाल से प्रचलित मान्यताओं के प्रति सम्मान।

(vi) **जीवात्मा** – प्राणियों में रहने वाली आत्मा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) रामकृष्ण मिशन का भारतीय समाज और धर्म सुधार के लिए क्या और किस प्रकार योगदान रहा?

(2) थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रमुख उद्देश्य एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) राधास्वामी सत्संग पर टिप्पणी लिखिए।

(2) रामकृष्ण मिशन के कार्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) रामकृष्ण मिशन की स्थापना किसने की ?

(1) रामकृष्ण परमहंस (2) ईश्वरचन्द्र विधासागर

(3) स्वामी विवेकानन्द (4) केशवचन्द्र सेन

(2) रामकृष्ण मिशन की स्थापना कब हुई ?

(1) 1885 (2) 1875 (3) 1828 (4) 1887

(3) भारत में थियोसोफिकल सोसाइटी का प्रमुख केन्द्र कहाँ स्थापित किया गया ?

(1) अड्यार (मद्रास) (2) दिल्ली (3) कलकत्ता (4) पूना

(4) श्रीमती ऐनीवेसेन्ट कहाँ की महिला थी ?

(1) इंग्लैण्ड (2) आयरलैण्ड (3) पुर्तगाल (4) इटली

(5) राधास्वामी सत्संग की स्थापना किसके द्वारा की गयी ?

(1) स्वामी विवेकानन्द (2) रानाडे (3) शिवदयाल (4) दयानन्द सरस्वती

उत्तर – 1–स, 2–द, 3–अ, 4–ब, 5–स

इकाई तृतीय– मुस्लिम सुधार आन्दोलन, देवबन्द, अलीगढ़–सर सैय्यद अहमद खाँ एवं इकबाल के विशेष सन्दर्भ में

इकाई की रूपरेखा :

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मुस्लिम सुधार आन्दोलन के कारण

3.3 मुस्लिम सुधार आन्दोलन

3.3.0 अलीगढ़ आन्दोलन

3.3.1 देवबन्द शाखा

3.3.2 वहाबी आन्दोलन

3.3.3 अहमदिया आन्दोलन

3.4 मुस्लिम सुधार आन्दोलन का प्रभाव

3.5 सारांश

3.6 महत्वपूर्ण बिन्दु

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- समाज सुधार से पूर्व मुस्लिम समाज की दशा के बारे में जान सकेंगे;
- मुस्लिम समाज सुधारकों के बारे में जान सकेंगे;

- मुस्लिम समाज सुधार में कौन–कौन सी संस्थाओं का योगदान रहा इसके बारे में जान सकेंगे;
- मुस्लिम समाज में सुधार आन्दोलन का सामाजिक परिवर्तन में योगदान के बारे में जान सकेंगे;

3.1 प्रस्तावना :

19वीं सदी में धर्म एवं समाज सुधार की जो लहर भारत में उठी उससे मुसलमान सम्प्रदाय भी मुक्त न रहा। उसमें भी विभिन्न धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन हुए। समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्धविश्वासों, अशिक्षा को दूर करने का प्रयास किया गया। मुसलमानों में नई चेतना के संचार के लिए उन्होंने चिन्तन किया और आधुनिक शिक्षा, संस्कृति अपनाने की ओर प्रेरित किया।

3.2 मुस्लिम सुधार आन्दोलन के कारण

मुसलमानों में समाज सुधार हेतु एक नहीं अनेक कारण उत्तरदायी थे जो निम्नलिखित हैं:

(i) 19वीं सदी में हिन्दुओं में अनेक समाजिक सुधार प्रारम्भ हो चुके थे जिसका प्रभाव मुस्लिम समाज पर भी पड़ा और उन्होंने भी अपने समाज में सुधार कार्य प्रारम्भ कर दिया।

(ii) इस समय पाश्चात्य शिक्षा के सम्पर्क में अनेक मुस्लिम आये और पाश्चात्य शिक्षा ने शिक्षित मुस्लिमों में नई चेतना जागृत की।

(iii) इस समय अनेक समाचार पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से समाज के अन्दर वैज्ञानिक विचारों का आदान–प्रदान प्रारम्भ हो चुका था जिसके कारण मुस्लिम समाज के अन्दर जागृति आना स्वाभाविक हो गया था।

3.3 मुस्लिम सुधार आन्दोलन

19वीं सदी में निम्नलिखित मुस्लिम सुधार आन्दोलन हुए:

3.3.0 अलीगढ़ आन्दोलन :

कहा जाता है कि जो कार्य हिन्दुओं के लिए राजा राममोहन राय ने किये वही कार्य सर सैय्यद अहमद खाँ ने मुस्लिम समाज के लिए किये। मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा और आधुनिकरण की ओर ले जाने का श्रेय सर सैय्यद अहमद खाँ को है और उनका अलीगढ़ आन्दोलन इनका केन्द्र बिन्दु रहा। 1817 ई0 में दिल्ली में सर सैय्यद अहमद खाँ का जन्म हुआ 20 वर्ष की आयु में वे सरकारी सेवा में आ गये।

सर सैय्यद अहमद खाँ ने 1864 में गाजीपुर में अंग्रेजी शिक्षा का एक स्कूल स्थापित किया, एक वर्ष बाद अंग्रेजी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करने के लिए एक **'विज्ञान समाज'** की स्थापना की। 1869 ई0 में की गयी अपनी लंदन–यात्रा के पश्चात् 1877 ई0 में अलीगढ़ में **'ऐग्लो–ओरिएण्टल कालेज'** की स्थापना की जो वाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय कहलाया और **'अलीगढ़–आन्दोलन'** का केन्द्र बिन्दु बना। सर सैय्यद अहमद खाँ ने एक Mohammendan Education Conference की भी स्थापना की और उसके माध्यम से अनेक ऐसे मुसलमानों को अपने साथ सम्मिलित कर लिया जो मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में लाने के लिए उत्सुक थे और उसके लिए प्रयत्न करने को तत्पर थे।

अलीगढ़ आन्दोलन ने मुसलमानों की शिक्षा सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति और आधुनिकीकरण के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया।

अलीगढ़ का ऐग्लो–ओरिएण्टन कॉलेज मुसलमानों की राजनीतिक कार्यवाही का केन्द्र स्थल बन गया, इस कॉलेज के प्रथम प्रिन्सिपल 'थियोडोर बैक' (Theodore Beck) ने सर सैय्यद अहमद खाँ के विचारों को गम्भीरता से प्रभावित किया। उसने 1893 में की 'Mohammendan Anglo-Oriental Defence Association of India' की स्थापना की जिसके सदस्य केवल अंग्रेज और मुसलमान हो सकते थे तथा जिसका मुख्य लक्ष्य भारतीय मुसलमानों को राजनीति से प्रथक करना था। बैक के पश्चात् उस कॉलेज का प्रिन्सिपल मौरसिन बना और उसने भी हिन्दुओं और अखिल भारतीय कांग्रेस का विरोध किया तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने की नीति अपनायी।

जो कार्य भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दू सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों ने हिन्दुओं के लिए किया वही कार्य अलीगढ़ आन्दोलन ने भारतीय मुसलतमानों के लिए किया। इस आन्दोलन ने मुस्लिमों को निराशा और अकर्मण्यता से

बचाया तथा उसे मध्य युग से आधुनिक युग में लाने में सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार यह भी स्वीकार किया जाता है कि मुसलमानों की शिक्षा समाज सुधार और जागृति के लिए जो कार्य सर सैय्यद अहमद खाँ ने किया वह उस समय तक किसी अन्य मुसलमान ने नहीं किया था। उन्होंने मुस्लिम समाज और धर्म में सुधार करके उन्हें आधुनिक परिस्थितियो के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने ही मुसलमानों को पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के सम्पर्क में लाकर उसे प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न किया अपने इस लक्ष्य में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की। इस प्रकार सर सैय्यद अहमद खाँ और अलीगढ़ आन्दोलन ने मुसलमानों की शिक्षा सुधार और आधुनिकीकरण के लिए निःसन्देह महत्वपूर्ण कार्य किया।

3.3.2 देवबन्द आन्दोलन

मुसलमान उल्मा ने जो प्राचीन मुस्लिम विद्या के अग्रणी थे देवबन्द आन्दोलन चलाया। यह एक पुनर्जागरणवादी आन्दोलन था, जिसके दो उद्देश्य थे;

(i) मुसलमानों में कुरान तथा हदीस की शुद्ध शिक्षा का प्रसार करना और (ii) विदेशी शासकों के विरूद्ध जिहाद की भावना को जागृत करना।

उल्मा ने मुहम्मद कासिम ननौतवी (1932–80) तथा रशीद अहमद गंगोही (1828–1905) के नेतृत्व में देवबन्द उत्तर प्रदेश के जिला सहारनपुर में एक विद्यालय खोला (1866) उद्देश्य यह था कि मुस्लिम सम्प्रदाय के लिए धार्मिक नेता प्रशिक्षित किये जाएं। पाठशाला के पाठ्क्रम में अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य–संस्कृति पूर्ण रूप से वर्जित थी। शिक्षा मौलिक इस्लाम धर्म की दी जाती थी और उद्देश्य यह था कि मुस्लिम सम्प्रदाय का नैतिक तथा धार्मिक पुनरूद्धार किया जाए। यह अलीगढ़ आन्दोलन का समर्थक था। देवबन्द विद्यालय विद्यार्थियों को सरकारी सेवा अथवा सांसारिक सुख के लिए तैयार नहीं करता था अपितु इस्लाम धर्म को फैलाने के लिए शिक्षा देता था। इसके फलस्वरूप यहाँ भारत के भिन्न–भिन्न भागों से तथा विदेशों से भी विद्यार्थी आने लगे।

राजनीति में देवबन्द शाखा ने 1885 में बनी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का स्वागत किया। 1888 में देवबन्द के उल्मा ने सैय्यद अहमद खाँ की बनाई संयुक्त राष्ट्रीय राजभक्त सभा तथा मुस्लिम ऐग्लो ओरिएन्टल सभा के विरूद्ध फतवा (धार्मिक आदेश) जारी किया। कुछ आलोचको की यह धारणा है कि देवबन्द उल्मा का समर्थन

किन्हीं निश्चित राजनीतिक विश्वासों के कारण अथवा अंग्रेजों के कारण नहीं अपितु सर सैय्यद अहमद खाँ के क्रियाकलापों के विरोध में किया गया था।

महमूद–उल–हसन जो देवबन्द शाखा के नये नेता थे, ने इस शाखा के धार्मिक विचारों को राजनीतिक तथा बौद्धिक रंग देने का प्रयत्न किया, उन्होंने राष्ट्रीय आकांक्षाओं तथा मुस्लिम निष्ठाओं में समन्वय स्थापित किया। जिसके फलस्वरूप जमायत–उल–उलमा ने हसन के विचारो के अनुसार धर्म की रक्षा तथा मुसलमानों के राजनीति अधिकारों को भारत की एकता तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में रखकर एक ठोस रूप प्रदान किया।

3.3.2 वहाबी आन्दोलन

मुसलमानों के पाश्चात्य प्रभावों के विरूद्ध सर्वप्रथम जो प्रतिक्रिया हुई उसे बहावी आन्दोलन या वलीउल्लाह आन्दोलन के नाम से स्मरण किया जाता है। वास्तव में यह पुनर्जागरण आन्दोलन था। शाह वलीउल्लाह (1702–62) भारतीय मुसलमानों के वह प्रथम नेता थे जिन्होंने भारतीय मुसलमानों में हुई गिरावट पर चिन्ता व्यक्त की थी। उन्होंने मुसलमानों के रीति रिवाजों तथा मान्यताओं में आयी कुरीतियों की ओर ध्यान दिलाया। उनके योगदान के मुख्य दो अंग थेः (i) उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इस्लाम धर्म के प्रमुख चारों न्याय शास्त्रों में सामंजस्य स्थापित होना चाहिए जिसके कारण भारतीय मुसलमान आपस में बटे हुए हैं। (ii) उन्होंने धर्म में वैयक्तिक अन्तरचेतना पर भी बल दिया। उन्होंने कहा जहाँ कुरान और हदीस के शब्दों की कभी कभी विरोधात्मक व्याख्या हो सकती तो व्यक्ति को अपनी विवेचना तथा अन्तरचेतना के अनुसार निर्णय लेना चाहिए।

शाह अब्दुल अजीज तथा सैय्यद अहमद खाँ बरेलवी (1786–31) ने वलीउल्ला के विचारों को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने इसे राजनीतिक रंग भी दिया इस विचार का आरम्भ तब हुआ जब एक मौलवी अब्दुल अजीज ने यह फतवा (धार्मिक आज्ञा) दिया कि भारत एक दार–उल–हर्ब (काफिरों का देष) है और इसे दार–उल–इस्लाम बनाने की आवश्यकता है प्रारम्भ में यह अभियान पंजाब में सिख सरकार के विरूद्ध था परन्तु 1849 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब विलय के उपरान्त यह अभियान अंग्रेजों के विरूद्ध बदल दिया गया यह आन्दोलन 1870 तक चलता रहा और बाद में इसे सैनिक शक्ति के द्वारा समाप्त कर दिया गया।

3.3.3 अहमदिया आन्दोलन

19वीं शताब्दी के अंतिम समय में (1889 में) अहमदिया आन्दोलन प्रारम्भ हुआ इस आन्दोलन के संस्थापक मिर्जा गुलाम अहमद थे। यह पंजाब में शुरू किया गया था। मिर्जा गुलाम अहमद ने अपने आपको ईश्वर का पैगाम्बर बताया जिसका उद्देश्य भारत में शुद्ध इस्लाम की स्थापना था। अहमदिया आन्दोलन ने कुरान की आज्ञाओं का आध्यात्मिक और नैतिक आधार पर पालन करने पर बल दिया। इस आन्दोलन का उद्देश्य शुद्ध इस्लाम का प्रचार करना था। सामाजिक दृष्टि से इसने इस्लाम की प्राचीन परम्पराओं का पालन करना उचित बताया तथा इस आधार पर पर्दा प्रथा, तलाक, बहु विवाह आदि का समर्थन किया। अहमदिया आन्दोलन आर्य समाज के विरोध में रहा और इसने सर सैय्यद अहमद खाँ जैसे पाश्चात्य शिक्षा और विचारों के समर्थक मुस्लिम सुधारकों का भी विरोध किया। 1914 में लगभग इस आन्दोलन के अन्तर्गत नवीन लाहौरी दल का विकास हुआ जिसमकें मिर्जा गुलाम अहमद को पैगाम्बर की बजाय एक समाज सुधारक मात्र माना। परन्तु भारतीय मुसलमानों का सबसे महत्वपूर्ण आन्दोलन सर सैय्यद अहमद खाँ के नेतृत्व में अलीगढ़ आन्दोलन हुआ।

3.4 मुस्लिम सुधार आन्दोलन का प्रभाव

मुस्लिम समाज सुधारकों ने समाज सुधार हेतु जो आन्दोलन प्रारम्भ किये उनका सुधार हेतु जो आन्दोलन प्रारम्भ किये उनका समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा जो निम्नलिखित हैः

(i) मुस्लिम समाज सुधार आन्दोलन का पहला प्रभाव यह पड़ा कि इसके परिणाम स्वरूप मुस्लिम समाज में नई चेतना जाग्रत हुई। उनका ध्यान समाज में व्याप्त बुराईयों की तरफ गया। नव शिक्षित मुस्लिम लोग इस आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने लगे।

(ii) दूसरा प्रभाव, आधुनिक शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान दर्शन एवं साहित्य के अध्ययन में लोगों की रूचि में वृद्धि हुई।

(iii) आन्दोलन का तीसरा प्रभाव यह पड़ा कि देश में मुसलमानों की शिक्षा के लिए अनेक स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना की गयी।

(iv) चौथा प्रभाव, मुसलमानों में जाग्रति हेतु अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रचलन किया गया।

3.5 सारांश

संक्षेप में 19वीं सदी के नवजागरण में कई मुस्लिम सुधार आन्दोलन हुए। इस सुधार आन्दोलन में अलीगढ़ आन्दोलन का प्रमुख स्थान है। इस आन्दोलन के प्रणेता सर सैय्यद अहमद खाँ के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। मुसलमानों की शिक्षा, समाज सुधार और जागृति के लिए जो कार्य सर सैय्यद अहमद खाँ ने किया वह उस समय तक किसी भी अन्य भारतीय मुसलमान ने नहीं किया था। उन्होंने मुस्लिम समाज और धर्म में सुधार करके उन्हें आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने ही मुसलमानों को पश्चिमी सभ्यता और सम्पर्क में लाकर उन्हें प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न किया। भारतीय मुसलमानों की शिक्षा सुधार और आधुनिकरण के लिए निःसन्देह, उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया।

3.6 महत्वपूर्ण बिन्दु

- मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा और आधुनिकरण की ओर ले जाने का श्रेय सर सैय्यद अहमद खाँ को है और उनका अलीगढ़ आन्दोलन इसका केन्द्र बिन्दु रहा।
- सर सैय्यद अहमद खाँ का जन्म 1817 में दिल्ली में हुआ था।
- सर सैय्यद अहमद खाँ के जीवन के दो प्रमुख उद्देश्य अंग्रेज और मुसलमानों के सम्बन्ध को सुधारना तथा मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार करना।
- 1875 में सर सैय्यद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में एंग्लो–ओरिएण्टल कॉलेज की स्थापना की जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय कहलाया एवं अलीगढ़ आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बना।
- एंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज के प्रथम प्रिंसिपल थियोडोर बैक थे।
- सर सैय्यद अहमद खाँ ने कुरान पर एक टीका लिखी तथा **तहजीव–उल–अख़लाक** नामक पत्रिका निकाली।
- अहमदिया आन्दोलन 1889 में हुआ इसके प्रवर्तक मिर्जा गुलाम अहमद थे।
- अहमदिया आन्दोलन का प्रारम्भ पंजाब के गुरूदासपुर जिले के कादिया नगर से प्रारम्भ हुआ था। बहावी आन्दोलन के प्रणेता उत्तर प्रदेश के रायबरेली निवासी सैय्यद अहमद बरेलवी एवं इस्लाम हाजी मौलवी मुहम्मद को माना जाता है।
- देवबन्द शाखा के संस्थापक मुहम्मद कासिम ननौत्वी व रशीद अहमद गंगोही थे। इन्होंने 1887 ई0 में देवबन्द में इस्लामी मदरसे की स्थापना की।

- देवबन्द स्कूल के समर्थकों में 'शिबली नोमानी' फारसी और अरबी के प्रतिष्ठित विद्वान थे।

3.7 शब्दावली

(i) **पाश्चात्य सभ्यता** – पश्चिमी देशों की सभ्यता

(ii) **आधुनिकरण** – समाज का परम्परागत ग्रामीण कृषि समाज से एक धर्म निरपेक्ष शहरी और औद्योगिक समाज में बदलाव व परिवर्तन

(iii) **कुरान** – इस्लाम धर्म की पवित्र पुस्तक

(iv) **हदीस** – इस्लामिक परम्पराएँ

(v) **पाश्चात्य संस्कृति** – पश्चिमी देशों की संस्कृति

(vi) **फतवा** – इस्लामिक धर्म गुरू द्वारा जारी आदेश

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) 19वीं शताब्दी के मुस्लिम सुधार आन्दोलनों की विवेचना कीजिए।

(2) अलीगढ़ आन्दोलन से आप क्या समझते हैं ? भारतीय मुसलमानों की उन्नति में उसका क्या सहयोग रहा ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) सर सैय्यद अहमद खाँ की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिये।

(2) देवबन्द आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिए।

(3) वहाबी आन्दोलन के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) अलीगढ़ में मुस्लिम एंग्लो–ओरिएण्टल कॉलेज की स्थापना किसने की –

(1) सर सैय्यद अहमद खाँ (2) अबुल कलाम आजाद

(3) महमूद उल हसन (4) मु0 अली जिन्नाह

(2) मिर्जा गुलाम अहमद किस आन्दोलन से सम्बन्धित थे –

(1) अलीगढ़ (2) अहमदिया

(3) देवबन्द (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

(3) निम्न में से कौन देवबन्द आन्दोलन से जुड़ा हुआ था –

(1) महमूद उल हसन (2) मु0 अली

(3) सर सैय्यद अहमद खाँ (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर – 1–अ, 2–ब, 3–अ

इकाई चतुर्थ – प्रमुख समाज सुधारक

इकाई की रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राजामोहन राय

4.3 दयानन्द सरस्वती

4.4 स्वामी विवेकानन्द

4.5 श्रीमती ऐनी बेसेन्ट

4.6 रामकृष्ण परमहंस

4.7 ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

4.8 सर सैय्यद अहमद खाँ

4.9 ज्योतिबा फूले

4.10 रानाडे

4.11 सारांश

4.12 महत्वपूर्ण बिन्दु

4.13 शब्दावली

4.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने बाद आपः

- समाज सुधारकों के जीवन के बारे में जान सकेंगे;

- समाज सुधारकों के द्वारा किये गये कार्यों के बारे में जान सकेंगे;
- समाज सुधारकों के विचारों के बारे में जान सकेंगे;
- समाज सुधारकों का धर्म व समाज के प्रति क्या दृष्टिकोण रहा था इसके बारे में जान सकेंगे;

4.1 प्रस्तावना :

19वीं सदी में जितने भी समाज सुधारक हुए वे समाज सेवा के भाव से प्रेरित थे और वे समाज में अनेक ऐसे बदलाव लाना चाहते थे जो एक आधुनिक समाज के लिए आवश्यक होते हैं इसी उद्देश्य की पूति हेतु निम्नलिखित समाज सुधारकों ने कार्य किये।

4.2 राजा राममोहन राय

राजाराम मोहन राय को नवीन युग का प्रवर्तक **'भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन का पिता'** तथा **'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का देवदूत'** आदि अनेक नामों से जाना जाता है। राजाराम मोहन राय निःसन्देह आधुनिक भारत के निर्माता थे। राजाराम मोहन राय का जन्म 22 मई, 1774 ई0 को बंगाल के बर्दमान जिले के राधानगर नामक एक ग्राम में कट्टर ब्रह्मण परिवार में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालय में प्राप्त करने के बाद 12 वर्ष की आयु में वे फारसी एवं अरबी पढ़ने के लिए पटना गये। यहाँ पर उन्होंने अरबी–फारसी के साथ–साथ कुरान एवं सूफी धर्म का भी अध्ययन किया। राजाराम मोहन राय बचपन से ही कुषाग्र बुद्धि एवं विद्रोही स्वभाव के थे। उन्होंने अग्रेजी, ग्रीक, फ्रेंच, लेंटिन, जर्मन एवं हिब्रू भाषाएँ भी सीखी। भारतीय भाषाओं के माध्यम से इस्लाम, ईसाई एवं अन्य विदेशी धर्मों का अध्ययन किया, जिससे यूरोपिय सभ्यता एवं संस्कृति तथा आधुनिक ज्ञान के सम्पर्क में आए।

20 अगस्त, 1828 ई0 को राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य हिन्दू समाज में प्रचलित जाति प्रथा अस्पृश्यता, मूर्तिपूजा, बहुविवाह एवं सती प्रथा आदि को दूर करना था। इसके अनुयायियों का मानना था कि परमात्मा एक है और वह सम्पूर्ण सदगुणों का केन्द्र एवं भण्डार है।

महिलाओं की दशा सुधारने हेतु भी रामा राममोहन राय ने संघर्ष किया। सती प्रथा के विरूद्ध व्यापक आन्दोलन चलाया और जिसके फलस्वरूप लार्ड विलियम बैटिंग ने 1829 में सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। इसके अलावा राममोहन राय ने स्त्री

शिक्षा का भी समर्थन किया, स्त्री सम्पत्ति उत्तराधिकार, विधवा विवाह का समर्थन किया। शिक्षा के क्षेत्र में राजाराम मोहन राय ने अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी शिक्षा का समर्थन किया। 1817 में हिन्दू कॉलेज की स्थापना की। 1822 में ऐंग्लो–हिन्दू स्कूल तथा 1825 में 'वेदान्त कॉलेज' की स्थापना की। 'सम्वाद कौमदी' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी किया।

नवम्बर 1830 ई0 में राजा राममोहन राय इंग्लैण्ड चले गए। वे ईसाई धर्म सभ्यता एवं अंग्रेजी जीवन का अध्ययन करना चाहते थे। इंग्लैण्ड से फ्रांस चले गये, लेकिन बीमार हो जाने के कारण पुनः इंग्लैण्ड लौट आये जहाँ 27 दिसम्बर 1833 ई0 को उनका देहान्त हो गया।

संक्षेप में, राजा राममोहन राय एक महान समाज सुधारक, महान राजनीतिक, विचारक, अन्तर्राष्ट्रीयता के पुजारी, महान शिक्षा शास्त्री तथा देशभक्त थे **बी.एन. शील** का कथन है कि वे सच्चे और विशुद्ध मानवतावादी थे तथा उनकी दृष्टि के सम्मुख विश्व–मानवता का चित्र उपस्थित रहता था।

4.3 दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारतीय समाज सुधारक थे जिन्होंने हिन्दू समाज को रूढ़ीवादी प्रथाओं और अन्धविश्वासों के बन्धन से मुक्त कराने का संकल्प किया और उसके प्राचीन गौरव के पुनरूत्थान का बीड़ा उठाया। उन्होंने धार्मिक जीवन में बहुदेव–पूजा तथा मूर्ति–पूजा का विरोध करते हुए निराकार एकेश्वरवाद का प्रचार किया।

दयानन्द सरस्वती का जन्म 1824 में गुजरात के काठियावादड़ की मोर्वी रियासत के टंकारा नामक छोटे से शहर में एक रूढ़ीवादी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन का नाम मूलशंकर था। दयानन्द सरस्वती ने 1845 में विवाह होने से पहले ही घर छोड़ दिया और भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। 1861 में मथुरा के स्वामी विरजानन्द को अपना गुरू बनाया और वहीं पर वेदों का अध्ययन किया। दयानन्द ने अपनी गुरू की आज्ञा से धर्मनुसार का व्रत लिया, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 1875 में 'आर्य–समाज' की स्थापना की। 1882 ई0 में **गो–रक्षणी** सभा की स्थापना की तथा इसी समय **'गौ करूणा निधि'** नामक पुस्तक की रचना की। इसके अलावा स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश, वेद भाष्य, ऋग्वेदादिभाष्य' आदि पुस्तकें लिखीं। 30 अक्टूबर 1883 ई0 को 59 वर्ष की आयु में स्वामी जी का देहान्त हो गया।

जिस प्रकार मर्टिन लूथर का कहना था कि **'बाइबल की ओर लौटो'** ठीक उसी तरह दयानन्द सरस्वती का कहना था कि वेदों की ओर लौटो। उन्होंने **'भारत भारतीयों के लिए'** नारा दिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रमुख शिक्षाएं निम्नलिखित थीं। जिसका वर्णन सत्यार्थ प्रकाश में हैं–

(i) वेद ही सत्य ज्ञान के स्त्रोत हैं, अतः वेदों का अध्ययन आवश्यक है।

(ii) वेदों के आधार पर महापाठ और हवन करना।

(iii) मूर्तिपूजन का खण्डन।

(iv) तीर्थ यात्रा और अवतारवाद का विरोध।

(v) कर्म और पुनर्जन्म अथवा जीवन के आवागमन के सिद्धान्त में विश्वास।

(vi) एक ईश्वर में विश्वास जो निराकार है।

(vii) स्त्री शिक्षा में विश्वास।

(viii) बाल विवाह और बहु विवाह का विरोध।

(ix) कुछ विशेष परिस्थितियों में विधवा विवाह का समर्थन।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर आर्य समाज ने हिन्दू धर्म और समाज के सुधार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये। इसके अलावा आर्य समाज ने राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4.4 स्वामी विवेकानन्द

स्वामी रामकृष्ण के अध्यात्मवाद के सिद्धान्त, सभी धर्मों की एकता तथा मानव मात्र की सेवा जैसो विचारों को विश्व में फैलाने का कार्य उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने किया। अपनी मृत्यु के समय रामकृष्ण ने विवेकानन्द से कहा कि, **ओ नरेन, आज मैंने अपना सब कुछ तुम्हें दे दिया है और मैं भिखारी हो गया हूँ। इस शक्ति को लेकर तुम महान कार्य करोगे और तत्पश्चात तुम उस जगह वापस चले जाओगे जहाँ से तुम आए थे।'**

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता में हुआ था। बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दल था। उन्होंने बी.ए. तक शिक्षा ग्रहण की। वे बड़े ही प्रतिभाशाली और जिज्ञासु छात्र थे। उन्होंने जान मिल, हर्बर्ट स्पेन्सर जैसे पाश्चात्य विद्वानों के दर्शन का विस्तृत अध्ययन किया। प्रारम्भ में वे ब्रह्म समाज की ओर आकर्षित हुए थे। वे एक अवसर पर स्वामी रामकृष्ण से मिले और उन्हें अपना गुरू बना लिया। स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और उसी अवसर पर उन्हें भारत की दरिद्रता, अज्ञान, अन्धविश्वास और पतन का परिचय हुआ। 1893 में स्वयं के प्रयत्नों से अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित **'सर्वधर्म सम्मेलन में'** भाग लेने गये और वहाँ उनके प्रथम भाषण ने ही सबको प्रभावित कर दिया। वहाँ उन्होंने वेदान्त समाज की स्थापना की। वहीं से वे पेरिस व लंदन गये और वहाँ धर्म प्रचार किया। वह एक बार पुनः अमेरिका गये। वहाँ से वापस लौटकर उन्होंने भारत की निर्धनता, जाति–प्रथा, कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास आदि के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया। उनका विश्वास था कि भारत में अपूर्ण शक्ति है उसे केवल जाग्रत करने की आवश्यकता है और यह जाग्रति धर्म के द्वारा सम्भव है। 1897 ई0 में उन्होंने रामकृष्ण मिशन की और 1899 ई0 में अपने प्राचीन मठ को वैल्लोर में स्थापित किया। 1899 वे पुनः अमेरिका गये और उन्होंने सम्पूर्ण यूरोप का भ्रमण किया तथा विभिन्न स्थानों पर वेदान्त समाज की स्थापना की। भारत वापस आने पर 1902 ई0 में 36 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

भारतीय संस्कृति एवं जागृति के लिए स्वामी विवेकानन्द ने महत्वपूर्ण योगदान दिया जो निम्नलिखित है :

(i) स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के अध्यात्मवाद को पुनर्जन्म दिया और एक बार पुनः हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करके उसे ईसाई और इस्लाम धर्म के आक्रमणों से बचाया। स्वयं पश्चिम के व्यक्तियों ने उन्हें **तूफानी भ्रमण करने वाले साधू** कहकर पुकारा।

(ii) स्वामी विवेकानन्द समस्त धर्मों की एकता में विश्वास करते थे।

(iii) स्वामी विवेकानन्द ने मानव मात्र की सेवा करने का उपदेश दिया। उन्होंने उपदेश दिया कि, **ईश्वर तुम्हारे सामने यही पर विभिन्न रूपों में है जो ईश्वर के बच्चों को प्यार करता है वह ईश्वर की सेवा करता है।.... निर्धन न समझ अशिक्षित और असहाय को अपना ईश्वर बनाओ इनकी सेवा करना महनतम धर्म है।**

(iv) विवेकानन्द को अपने समय की आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों को बहुत ज्ञान था। उन्होंने यूरोप और अमेरिका में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को सिद्ध कर दिया 1883 ई0 में उन्होंने अमेरिका के शिकागों नगर में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया इस सम्मेलन में हिन्दू धर्म और वेदान्त दर्शन की बड़ी योग्यतापूर्वक व्याख्या की। उनके भाषण का श्रोताओं पर इतना प्रभाव पड़ा था कि उन्हें, ''**दैवी शक्ति सम्पन्न वक्ता**'' कहकर पुकारा गया। इस सन्दर्भ में न्यूयार्क हेराल्ड नामक समाचार पत्र ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था, **''उनको सुनने के बाद हम यह अनुभव करते हैं कि ऐसे ज्ञान सम्पन्न देश में अपने धर्म प्रचारक भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है।''**

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने अपनी भारतीय सभ्यता एवं धर्म का पुनरूत्थान कर हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की महान सेवा की, जिसके लिए भारत उनका सदा ऋणी रहेगा।

4.5 श्रीमती ऐनी बेसेन्ट

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट का जन्म 1847 में आयरलैण्ड के एक निर्धन परिवार में हुआ था। 20 वर्ष की उम्र में इनका विवाह एक पादरी से कर दिया गया था, परन्तु पति से उनका मनमुटाव हो गया और पति को छोड़कर 1893 ई0 में वे थियोसोफिकल सोसाइटी की सदस्य बनकर भारत आयीं। 1907 ई0 में अल्काट की मृत्यु के बाद वह इस सोसाइटी के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुई। उनका मानना था कि ''भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते हैं। हिन्दुत्व के बिना भारत के समक्ष कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है जिसमें भारत वर्ष का मूल गढ़ा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा दी जायेगी तो भारत रूपी वृक्ष सूख जाएगा।

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने अनेक क्षेत्रों में योगदान दिया जो निम्नलिखित है –

(i) हिन्दू धर्म की उन्होंने महत्वपूर्ण सेवा की। ऐनी बेसेन्ट ने बहुदेववाद, यज्ञ, तीर्थ, तप, कर्मवाद, पुनर्जन्म तथा धार्मिक अनुष्ठानों आदि हिन्दुओं के विश्वासों तथा कर्मकाण्डों का वैज्ञानिक ढंग से बड़ा प्रबल समर्थन किया। ऐनी बेसेन्ट की इन बातों से हिन्दुओं में नव–चेतना का संचार हुआ और उसका हिन्दू धर्म में फिर से विश्वास जागृत हो गया। वे कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त में भी विश्वास करती थीं। एक विदेशी महिला के मुख से अपने धर्म के गौरव और महानता के बारे में सुनकर हिन्दू काफी प्रभावित हुए। ऐनी बेसेन्ट को इस बात का श्रेय है

कि उन्होंने उदासीन एवं सोती भारतीय जनता को जगाकर उसमें आत्म–सम्मान और गौरव को पुनर्जाग्रत कर दिया।

(ii) इस संस्था ने (थियोसोफिकल सोसाइटी) ने ऐनी बेसेन्ट के नेतृत्व में भारत में अनेक स्थानों पर स्कूल एवं छात्रावास भी खुलवाए। इसके अतिरिक्त इस संस्था ने समाज में व्याप्त बाल–विवाह, कन्या वध, छुआछूत आदि बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया।

(iii) 1914 में ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और अपने विचारों के प्रचार हेतु **'कामनवील'** तथा **'न्यू इण्डिया'** नामक दो समाचार पत्रों का प्रकाशन किया। 1916 ई0 में उन्होंने लोकमान्य तिलक द्वारा चलाए गये होमरूल आन्दोलन में भाग लिया। उनका स्वयं का कहना था, **''मैं तो एक नगाड़ा हूँ जिसका कार्य सोए हुए भारतीयों को जगाना है ताकि अपनी मातृभूमि के लिए कार्यरत हो सकें।''**

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज सुधार आन्दोलन में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की महत्वपूर्ण भूमिका रहीं उनकी अध्यक्षता में थियोसोफिकल ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जिनके परिणाम स्वरूप हिन्दू समाज में जाग्रति आयी और अपने धर्म गौरव और महानता के बारे में जाना।

4.6 रामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण का जन्म 1836 ई0 में पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में कमारमुकुर नाम गांव में हुआ था। उनका जन्म एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन का नाम गदाधर चट्टोपाध्याय था। एक वर्ष की उम्र में इनके पिता का देहान्त हो गया था। अतः ये अपने बड़े भाई के पास कलकत्ता आ गये जहां उन्हें पुजारी का काम मिल गया। उसी समय कलकत्ता से चार मील दूर दक्षिणेश्वर में एक सम्पन्न बंगाली महिला ने सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाया। कुछ दिन पश्चात् गदाधर को इस मन्दिर का सहायक पुजारी बना दिया गया। गदाधर बड़े धार्मिक विचारों के थे। वे काली के उपासक थे तथा उसे विश्व जननी एवं माँ समझने लगे थे। 16 अगस्त 1886 ई0 में कैंसर से उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों के प्रचार का व्रत ले लिया।

रामकृष्ण परमहंस की प्रमुख शिक्षाएं एवं देन निम्नलिखित हैं :

(i) रामकृष्ण ने अपने सरल उपदेशों एवं जीवन के यथार्थ उदाहरणों द्वारा वेदों और उपनिषदों के जटिल ज्ञान को साधारण व्यक्तियों के निकट कर दिया।

(ii) दूसरी महत्वपूर्ण देन सभी धर्मों में एकता को जाग्रत करना था।

(iii) तीसरी महत्वपूर्ण देन मनुष्य मात्र की सेवा और भलाई को धर्म बनाना था उनका मानना था मनुष्य मात्र की सेवा दया भाव से करनी चाहिए।

डॉ. सिल्वेन लीवी ने रामकृष्ण के विषय में लिखा था कि, ''रामकृष्ण का हृदय और मस्तिष्क सभी देशों के लिए था। इसलिए उनका नाम सम्पूर्ण मानव मात्र की सम्पत्ति है।

महात्मा गाँधी के अनुसार, **रामकृष्ण परमहंस के जीवन की कहानी व्यावहारिक धर्म है। उनका जीवन हमें ईश्वर को हमारे सामने दिखाता है।''**

4.7 ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

राजा राममोहन राय के पश्चात समाज सुधारकों में एक महान समाज सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हुए। उनका जन्म सन् 1820 में एक अत्यन्त निर्धन परिवार में हुआ था। बड़े संघर्षमय जीवन में सफलता प्राप्त करने के पश्चात वे कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज के प्रधान अध्यापक के पद को प्राप्त करने में सफल हुए। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय का प्रतिनिधित्व करते थे। वे महान मानवतावादी थे तथा असहायों, निर्धनों और पीड़ितों से उन्हें अत्यधिक सहानुभूति थी। वह बहुत विद्वान थे उन्होंने संस्कृत पढ़ाने के लिए एक नवीन पद्धति को जन्म दिया, बंगला वर्णमाला लिखी जिसका प्रयोग आधुनिक समय में भी होता है और अपनी रचनाओं के द्वारा आधुनिक गद्यशैली के विकास में सहायता दी।

समाज सुधारक की दृष्टि से वह जाति प्रथा के विरोधी थे और स्त्रियों की दशा सुधारने के तीव्र पक्ष में थे। उन्होंने शूद्रों को संस्कृत पढ़ने का आह्वान किया और स्वयं उन्हें पढ़ाया। सन् 1855 में उन्होंने विधवा–पुनर्विवाह के पक्ष में आवाज उठाई और सरकार से इस हेतु कानून बनाने की मांग की। उनका प्रयत्न सफल हुआ। सन् 1856 में विधवा–पुनर्विवाह कानून बनाया गया। भारत में पहला कानूनी विधवा–विवाह कलकत्ता में 7 दिसम्बर 1856 ई0 को ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की प्रेरणा और देखरेख में सम्पन्न हुआ। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बाल–विवाह और बहु–विवाह प्रथा का भी तीव्र विरोध किया नारी शिक्षा के लिए उन्होंने स्वयं 25 बालिका–विद्यालयों की स्थापना की।

जिसके कारण स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ। इन्हीं समाज सुधारों के कारण राममोहन राय के पश्चात् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम आता है।

4.8 सर सैय्यद अहमद खाँ

सर सैय्यद अहमद खाँ ऐसे समाज सुधारक थे जिन्होंने भारत के मुस्लिम समुदाय में नई चेतना के संचार के लिए उन्हें आधुनिक शिक्षा, संस्कृति और चिन्तन पद्धति अपनाने को प्रेरित किया। उनका विश्वास था कि इंग्लैण्ड और अन्य पश्चिमी देशों ने अपनी धन सम्पदा और शक्ति विज्ञान और कलाओं के विस्तृत ज्ञान के आधार पर अर्जित की थी। अतः मुस्लिम समुदाय को भी अपनी उन्नति के लिए आधुनिक शिक्षा का सहारा लेना चाहिए।

सर सैय्यद अहमद खाँ का जन्म 1817 में दिल्ली के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। प्रारम्भ में उन्होंने रूढ़ीवादी शिक्षा प्राप्त की, किन्तु फिर बाद में अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की। 1839 ई0 में उन्होंने आगरा के अंग्रेज कमिश्नर के यहाँ नौकरी कर ली। 1857 ई0 में वो सदर अमीन बन ये। 1876 ई0 में सर सैय्यद अहमद खाँ सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त हुए। सर सैय्यद अहमद खाँ ने सेवानिवृत्त के बाद मुस्लिम समाज में शिक्षा का प्रसार तथा समाज सुधार करने के उद्देश्य से 1874 ई0 में अलीगढ़ में मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियण्टल स्कूल स्थापित किया व 1878 ई0 में मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियण्टल कॉलेज भी खोला। सर सैय्यद अहमद खाँ ने मुसलमानों की स्थिति सुधारने के लिए अलीगढ़ आन्दोलन चलाया। 1898 ई0 में उनकी मृत्यु हो गयी।

सर सैय्यद अहमद खाँ वैज्ञानिक विचारों से प्रभावित थे इसीलिए उन्होंने इस्लाम की मान्यताओं के साथ वैज्ञानिक विचारों का तालमेल बिठाने की कोशिश की। उन्होंने मुस्लिम समुदाय को सलाह दी कि वे अपने धार्मिक व सामाजिक जीवन में आधुनिक, पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को अपनाकर ही उन्नति कर सकते हैं। उन्होंने लोगों के सोचने समझने के ढंग में वैज्ञानिक मानसिकता को अपनाने की बात की। इस दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने पश्चिम जगत के अनेक गौरव ग्रन्थों का न केवल उर्दू में अनुवाद कराया, बल्कि स्वयं भी इसका प्रचार प्रसार किया।

सर सैय्यद अहमद खाँ के उपर्युक्त कार्यों के परिणाम स्वरूप मुस्लिम समाज में नई जाग्रति पैदा हुई और मुसलमानों में भी सुधार आन्दोलन चल पड़ा।

4.9 महात्मा ज्योतिबा फूले

महात्मा ज्योतिबा फूले (ज्योतिराव गोविन्दराव फूले) (1827–90) आधुनिक भारत के प्रसिद्ध समाज सुधारक एवं दार्शनिक थे। वे स्वयं पुणे की शुद्र जाति में पैदा हुए थे अतः उन्हें हिन्दु वर्ण–व्यवस्था से जुड़े, सामाजिक अन्याय का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त था। उन्होंने निम्न जातियों को इस अन्याय के विरूद्ध संगठित करने के उद्देष्य से अपने सहभागियों के साथ मिलकर 1873 ई0 में सत्य–शोधक समाज की स्थापना की। यह समाज मूर्तिपूजा के विरूद्ध था, और जाति प्रथा की कठोरता का खण्डन करता था। इसने तर्कसम्मत चिन्तन को बढ़ावा दिया और पुरोहितों की आवश्यकता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। 1881 ई0 में उन्हें महात्मा की उपाधि से सम्मानित किया गया। महात्मा फूले ने ही भारत की दबी कुचली जातियों का विवरण देने के लिए मराठी शब्द **'दलित'** के प्रयोग को बढ़ावा दिया।

महात्मा फूले ने निम्न जातियों के अलावा स्त्रियों के उत्थान में महत्वपूर्ण योग दिया। उन्होंने स्त्रियों तथा अन्य अपेक्षित वर्गों के कल्याण के लिए कई संस्थाएं स्थापित की। 1848 ई0 में उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री बाई फूले के साथ मिलकर बालिकाओं के लिए एक विद्यालय खोला। 1851 ई0 में उन्होंने बालिकाओं के लिए दो और स्कूल खोले। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह के लिए भी अभियान चलाया। 1863 ई0 में उन्होंने उच्च जाति की विधवाओं और अनचाहे नवजात शिशुओं के लिए एक आश्रम खोला ताकि कन्या शिशु हत्या जैसी अमानवीय प्रथा को रोका जा सके। ज्योतिबा फूले ने सामाजिक अन्याय के विरूद्ध कई पुस्तकें लिखीं। उनकी प्रमुख पुस्तकेः **जातिभेद का सार (1865), गुलाम गीरी (1873);** हैं।

ज्योतिबा फूले का मानना था कि समस्त स्त्री पुरूष से स्वतंत्र और समान हैं। जब ईश्वर ने उन्हें स्वतंत्र और समान बताया है तब किसी व्यक्ति को दूसरे का दमन करने का अधिकार नहीं रह जाता है। ज्योतिबा फूले ने हिन्दू धर्म की उन पुराण कथाओं का खण्डन किया जो वर्ण व्यवस्था के क्रूर अमानवीय नियमों का समर्थन करती थीं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अपने समय में ज्योतिबा राव फूले ने समाज सुधार हेतु अनेक कार्य किये इन्ही से प्रेरित होकर अनेक समाज सुधारकों का ध्यान निम्न वर्ग की ओर आकर्षित हुआ।

4.10 महादेव गोविन्द रानाडे

महादेव गोविन्द रानाडे का जन्म महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों के एक मध्य वर्गीय परिवार में 1842 ई0 में हुआ था। मराठा शासन के स्थान पर महाराष्ट्र में अब अंग्रेजी शासन स्थापित हो जाने से परिस्थितियां बदल चुकी थीं। इसी कारण परिवार में

अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने पर जोर दिया गया। बम्बई विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए. और एल.एल.बी. की शिक्षा ग्रहण की तथा 1893 में बम्बई उच्च न्यायालय में जज बने।

महाराष्ट्र में इस समय सामाजिक नवजागृति की लहर चल रही थी, वे भी इससे प्रभावित हुए। 19 वर्ष की आयु में ही वे विधवा–विवाह संघ के सदस्य बन गये इसी समय में एक साप्ताहिक पत्र 'इन्दु प्रकाश' के सम्पादक बने। महाराष्ट्र में ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के आधार पर 'प्रार्थना समाज' संगठित किया गया था। रानाडे कई वर्षों तक इससे सम्बद्ध रहे। 1887 ई0 में **'राष्ट्रीय समाज सुधार समिति'** की स्थापना इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य था।

वास्तव में, रानाडे एक महान समाज सुधारक थे उन्होंने साहित्य, राजनीति, धर्म, शिक्षा, उद्योग, व्यवसाय, समाज आदि में अथक परिश्रम से समाज सुधार के कार्य किये। समाज सुधार के साथ–साथ वे औद्योगिकरण और राष्ट्रीय प्रगति के भी कट्टर हिमायती थे। निःसन्देह वे भारत के आधुनिक पुनरूत्थान के महान् नेताओं में से एक थे।

4.11 सारांश

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि समाज सुधारकों ने समाज सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राजा राममोहन राय को समाज सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण ही भारत में नवीन युग का जन्मदाता कहा जाता है। स्वामी विवेकानन्द ने जिस तरह भारत की संस्कृति का विश्व भर में गौरव बढ़ाया उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके कार्यों के परिणाम स्वरूप ही भारत युवाओं में राष्ट्र के प्रति प्रेम जागा। ज्योतिबा फूले के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप समाज सुधारकों का ध्यान निम्न वर्ग की ओर गया और उनके जीवन में सुधार हेतु आन्दोलन चल पड़े। सर सैय्यद अहमद खाँ ने मुस्लिम समाज में नवचेतना जागृत की। इसी समय इन समाज सुधारकों ने महिलाओं की भी दशा सुधारने का प्रयास किया और सती–प्रथा, बाल–विवाह, कन्या–वध, देवदासी प्रथा, विधवा पुनर्विवाह आदि के खिलाफ उठाई और महिला अधिकारों का समर्थन किया।

4.12 महत्वपूर्ण बिन्दु

- राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का पिता कहा जाता है।

- राजा राममोहन राय का जन्म 1774 ई0 में राधानगर नामक एक गांव में (पश्चिमी बंगाल में) हुआ था।
- राजा राममोहन राय ने 20 अगस्त 1828 में कलकत्ता में ब्रह्म–समाज की स्थापना की।
- 1815 ई0 में एकेश्वरवाद के प्रचार–प्रसार हेतु आत्मीय सभा का गठन किया। 1817 ई0 में राममोहन राय ने कलकत्ता में **हिन्दू कॉलेज** की स्थापना में **डेविड हेयर** का सहयोग किया और 1825 ई0 में वेदान्त कॉलेज की स्थापना की।
- राजा राममोहन राय ने 1821 ई0 में बंगला साप्ताहिक **'सम्वाद कौमदी'** फारसी में 1822 ई0 में साप्ताहिक अखबार शुरू किया, जिसमें राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय समस्याएं प्रकाशित होती थी।
- दयानन्द सरस्वती का जन्म 1824 ई0 में काठियावड़ की मोरबी नामक स्थान पर ब्राह्मण परिवार में हुआ था।
- दयानन्द ने 1875 ई0 में आर्य समाज की स्थापना की।
- दाण्डी स्वामी पूर्णानन्द ने ही मूलशंकर से नाम बदलकर दयानन्द सरस्वती रखा।
- स्वामी दयानन्द ने अपना गुरू स्वामी वृजानन्द को बनाया।
- दयानन्द सरस्वती ने 'वेदों की ओर लौटो' नारा दिया।
- 'सत्यार्थ प्रकाश' (1874 ई0) दयानन्द द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तक है।
- 1883 ई0 में दयानन्द सरस्वती की मृत्यु हो गयी।
- 'वेलेन्टाइन चिरोल' ने अपनी पुस्तक **'इण्डियन अनरेन्ट'** में आर्य समाज को भारतीय अशान्ति का जन्मदाता कहा।
- विवेकानन्द का जन्म 1863 ई0 में बंगाल के हुगली गांव में हुआ था।
- विवेकानन्द के गुरू रामकृष्ण परमहंस थे।
- 1893 में शिकागो शहर में आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने भाग लिया।
- 1897 ई0 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना (बेलूर में) हुई।
- 1902 ई0 में स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु हो गयी।
- थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना 1875 ई0 में हुई, भारत में इसकी स्थापना 1886 ई0 में मद्रास के निकट अड्यार में की गयी।

- 1907 ई0 में श्रीमती एनी बेसेन्ट इसकी अध्यक्ष बनी।
- 1820 ई0 में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म हुआ।
- 1836 ई0 में पश्चिम बंगाल में रामकृष्ण परमहंस का जन्म हुआ।
- 1817 ई0 में दिल्ली में सर सैय्यद अहमद खाँ का जन्म हुआ।
- 1875 ई0 में सर सैय्यद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में **'एंग्लो ओरियण्टल कॉलेज'** की स्थापना की।
- 1875 ई0 में ज्योतिबा फूले ने सत्यरोधक समाज की स्थापना की।
- महादेव गोविन्द रानाडे का जन्म 1842 ई0 में महाराष्ट्र में हुआ था।

4.13 शब्दावली

(i) **पुनर्जागरण** – फिर से जागृत होने की क्रिया।

(ii) **अस्प्रश्यता** – हिन्दू समाज में प्रचलित एक ऐसी प्रथा जिसके आधार पर निम्नवर्ग के समाज के लोगों के साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता था।

(iii) **विधवा विवाह** – पति की मृत्यु के बाद पत्नी द्वारा दूसरा विवाह करना।

(iv) **आध्यात्मवाद** – वह सिद्धांत या वाद जो आत्मा, परमात्मा, दिव्य शक्तियों आदि की सत्ता एवं स्वरूप का प्रतिपादन करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) राजा राममोहन राय के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

(2) स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

(3) भारतीय धर्म एवं समाज सुधार हेतु श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

(4) स्वामी विवेकानन्द का भारतीय समाज और धर्म सुधार के लिए किस प्रकार योगदान रहा।

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए –

(1) रामकृष्ण परमहंस (2) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

(3) सर सैय्यद अहमद खाँ (4) ज्योतिब फूले

(5) रानाडे (6) केशवचन्द्र सेन

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) फारसी पत्रिका 'मिरातुल अखबार' का सम्पादक कौन था –

(अ) सर सैय्यद अहमद खाँ (ब) राजा राममोहन राय

(स) महमूद उल हसन (द) केशवचन्द्र सेन

(2) 'वेदों की ओर लौटो' किसने कहा –

(अ) रामकृष्ण परमहंस (ब) स्वामी विवेकानन्द

(स) स्वामी दयानन्द सरस्वती (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(3) 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना किसके द्वारा की गयी –

(अ) स्वामी दयानन्द सरस्वती (ब) केशवचन्द्र सेन

(स) आत्माराम पाण्डुरंग (द) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

(4) किसके द्वारा 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की गयी –

(अ) ज्योतिबा फूले (ब) रानाडे

(स) स्वामी विवेकानन्द (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(5) किस समाज सुधारक ने 1893 ई0 में शिकागो में आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लिया–

(अ) श्रीमती ऐनीबेसेन्ट (ब) रानाडे

(स) स्वामी विवेकानन्द (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर – 1–ब, 2–स, 3–अ, 4–अ, 5–स

इकाई पंचम– मध्यम वर्ग एवं महिलाओं का उदय

ईकाई की रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मध्यम वर्ग का उदय

5.3 आधुनिक भारत में महिलाओं का उदय

5.3.1 महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयास

5.3.2 आधुनिक भारत में महिला शिक्षा के प्रयास

5.3.3 नारी मुक्ति आन्दोलन

5.3.4 भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

5.4 सारांश

5.5 महत्वपूर्ण बिन्दु

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे कि–

- आधुनिक काल में मध्यम वर्ग के उदय के क्या कारण थे ?
- आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए क्या प्रयास किये गये ?
- महिला शिक्षा एवं महिला मुक्ति हेतु क्या प्रयास किये गये ?

- भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की क्या भूमिका थी एवं बीसवीं सदी में महिला उद्धार हेतु किस प्रकार प्रयास किये गये ?

5.1 प्रस्तावना :

भारतीय इतिहास में 19वीं शताब्दी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी समय धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन शुरू हुआ। यह शताब्दी भारत के इतिहास में सुधारों के युग के रूप में जानी जाती है। कम्पनी की पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से आधुनिक तत्कालीन युवा मन चिन्तनशील हो उठा, तरूण व वृद्ध सभी इस विषय पर सोचने के लिए मजबूर हुए। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित लोगों ने हिन्दू सामाजिक संरचना, धर्म, रीति–रिवाज़ व परम्पराओं को तर्क की कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया, इससे भारत में एक आधुनिक बृद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जोकि मध्यकाल के मध्यम वर्ग से भिन्न था। इस काल में अनेक समाज सुधारकों के द्वारा महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु प्रयास किये गये। उन्होंने समाज के पुनरूत्थान के लिए महिलाओं की स्थिति में सुधार को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना।

5.2 मध्यम वर्ग का उदय :

भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना एवं औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग के उदय के कई दशक पहले ही आधुनिक बुद्धजीवी वर्ग का उदय हो चुका था। राजाराम मोहन राय इस वर्ग की प्रथम पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग ने पाश्चात्य संस्कृति का अध्ययन किया और इस संस्कृति के बौद्धिक और प्रजातांत्रिक सिद्धांतों तथा धारणाओं को अंगीकार किया।

इस नवीन बुद्धजीवी वर्ग के उदय का मुख्य कारण था– भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार, ईसाई मिशनरियों की भूमिका एवं भारत में अपने शासन को मज़बूत बनाने के लिए अंग्रेजों के लिए एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता जो पश्चिम के आधुनिक एवं उदारवादी विचारों से परिचित हो। अंग्रेज़ यह उम्मीद करते थे कि आधुनिक विचारों से परिचित वह वर्ग अंग्रेज़ी शासन के मानवीय पहलुओं का आम जनता में प्रचार करेगा और इस कारण अंग्रेजी शासन अधिक दृढ़ और स्थायी बन सकेगा। 19वीं शताब्दी के प्रथम कुछ दशकों में शिक्षित भारतीयों की संख्या बहुत कम थी। जब अंग्रेजी शासन ने विद्यालय, महाविद्यालय खोले और उनके साथ ईसाई मिशनरियों ने भी इस दिशा में प्रयास आरम्भ किये, तब जाकर बुद्धिजीवियों का एक बड़ा वर्ग सामने आया।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में बुद्धिजीवियों की भूमिका निर्णायक रही। उन्होंने भारतीय जनता को आधुनिक राष्ट्र के रूप में एकान्वित किया और अनेक प्रगतिशील सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलनों का संगठन किया। ये राजनीतिक राष्ट्रवादी आंदोलन के जनक, प्रणेता, संगठनकर्ता और अग्रणी थे। घोर आत्मत्याग और अनेक कष्टों के बावजूद उन्होंने जनता के बीच शैक्षिक एवं प्रचारात्मक कार्य के द्वारा स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद के विचारों को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाया। उन्होंने राष्ट्रीयता तथ जनतंत्र की भावनाओं से ओतप्रोत प्रादेशिक साहित्य और संस्कृति की सृष्टि की। इनके बीच से अनेक वैज्ञानिक, कवि, इतिहासकार, समाजशास्त्री, दार्शनिक एवं अर्थशास्त्री पैदा हुए। इसी वर्ग ने नवीन भारत की जटिल समस्याओं को समझा एवं उनका निदान प्रस्तुत किया।

5.3 आधुनिक भारत में महिलाओं का उदय :

ब्रिटिश काल में स्त्रियों की स्थिति को सुधारने हेतु बहुमुखी प्रयत्न हुए जिसके कारण आधुनिक समय में तुल्नात्मक दृष्टि से भारतीय स्त्रियों की स्थिति पहले से बेहतर हुई है। ऐसा तो नहीं है कि स्त्रियों से सम्बन्धित सामाजिक कुरीतियाँ पूर्णतयः समाप्त हो गयी हो परन्तु यह अवश्य है कि इस सम्बन्ध में जागृति आयी है और धीरे–धीरे स्त्री को भारतीय समाज में सम्मानित स्थान प्रदान किये जाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

5.3.1 महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयास :

19वीं शताब्दी भारत के इतिहास में सुधारों के युग के रूप में जानी जाती है। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि समाज सुधारकों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु प्रयास आरम्भ किये। समाज सुधारकों ने इस बात पर विशेष बल दिया कि किसी भी धर्म में स्त्रियों पर अत्याचार करके उन्हें समाज में निम्न स्थान देने की अनुमति नहीं है। इन समाज सुधारकों ने समाज के पुनरूत्थान के लिए स्त्रियों की स्थिति में सुधार को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रयास किये गये–

1. सती प्रथा का अन्त– प्राचीन एवं मध्यकाल में ऐसी धारणा बन गयी कि पति के शव के साथ चिता में जलने से स्त्रियों का परलोक सुधर जायेगा। इस प्रथा की समाप्ति हेतु मध्य युग में कुछ प्रयास किये गये। मुग़ल सम्राट अकबर और जहाँगीर ने भी सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाये किन्तु यह प्रतिबन्ध दिल्ली तक ही सीमित रहे,

देशव्यापी न हो सके। 1510 में गोआ के पुर्तगाली गवर्नर अल्बुकर्क ने भी सती प्रथा को रोकने की कोशिश की एवं फ्रांसीसी शासकों ने भी अपने अधीनस्थ भारतीय क्षेत्रों में सती प्रथा को प्रतिबन्धित किया। इस क्रूर एवं अमानवीय प्रथा को बन्द करने हेतु राजा राममोहन राय ने अथक प्रयास किये। इस समय बंगाल में सती प्रथा का बाहुल्य था। राजाराममोहन राय के भाई की मृत्यु के बाद उनकी भाभी सती हो गयी थीं, इस घटना का उनके ऊपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने ''संवाद कौमुदी'' नामक पत्र के माध्यम से इस प्रथा के विरूद्ध प्रचार किया। उन्होंने बताया कि यह बर्बर एवं अमानवीय प्रथा है एवं धर्मशास्त्रों द्वारा भी अमान्य है। तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड बिलियम बैंटिक इस प्रथा के विरूद्ध किये जा रहे, इस प्रचार–प्रसार से अत्यन्त प्रभावित हुआ। जब राजा राममोहन राय, देवेन्द्र नाथ टैगोर एवं अन्य बुद्धिजनों ने सती प्रथा को प्रतिबन्धित करने की मांग की तो बैटिंक ने इस दिशा में अपने प्रयास तीव्र किये। उसने विभिन्न क्षेत्रों से इस प्रथा को बन्द करने हेतु समर्थन प्राप्त किया। अन्ततः 1829 में कानून बनाकर बंगाल सूबे में सती प्रथा को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। सती प्रथा में सहायता देने वालों पर मानव हत्या का मुक़दमा चलाने का प्रावधान किया गया। 1830 में यह क़ानून मद्रास एवं बम्बई प्रान्तों में भी लागू कर दिया गया। कालान्तर में अन्य ब्रिटिश शासित प्रान्तों में भी सती प्रथा अवैध घोषित कर दी गयी।

2. कन्या शिशु हत्या पर प्रतिबन्ध– 19वीं शताब्दी के पूर्व तक भारत के कई क्षेत्रों में कन्या जन्म को परेशानी का कारण माना जाता था। इसके कई कारण थे– कन्या के बड़ी होने पर अच्छे वर की तलाश की समस्या, दहेज प्रथा, कन्या के सतीत्व की सुरक्षा आदि। अतः राजस्थान, मालवा, पंजाब, बंगाल आदि प्रदेशों में कन्या का जन्म होते ही उसको नदी में फेककर या गला घोटकर अथवा अन्य तरीकों से उसकी हत्या कर दी जाती थी। 1795 ई0 में बंगाल अधिनियम 16 द्वारा एवं 1804 ई0 के अधिनियम 3 द्वारा कन्या शिशु हत्या को प्रतिबन्धित घोषित कर किया गया तथा कन्या शिशु हत्या को एक हत्या के समान अपराध माना गया। इस कानून को कठोरता से लागू करने का आदेश सम्बन्धित अधिकारियों को दिया गया।

3. बाल विवाह पर प्रतिबन्ध– सती प्रथा एवं कन्या शिशु हत्या के साथ–साथ बाल विवाह भी 19वीं शताब्दी के पूर्व एक सामाजिक बुराई के रूप में स्त्रियों की हीन अवस्था को प्रतिबिम्बित करते थे। यह युग में बाल विवाह का आलम यह था कि 4 वर्ष तक की बालिका का विवाह सम्पन्न करा दिया जाता था। भारत के बुद्धिजीवियों एवं समाज सुधार आन्दोलनों ने उसका पुरज़ोर विरोध किया। अन्ततः 1929 में बाल विवाह

निरोधक अधिनियम भारत सरकार ने व्यवस्थापिका सभा में पारित किया। उस समय के प्रसिद्ध वकील हर विलास शारदा ने इस अधिनियम को पारित कराने में काफ़ी प्रयास किये एवं इस अधिनियम के लिए प्रस्ताव भी उन्हीं के द्वारा रखा गया। अतः इस अधिनियम को शारदा अधिनियम भी कहा जाता है। इस शारदा अधिनियम के तहत विवाह हेतु कन्या की न्यूनतम आयु 14 वर्ष एवं लड़के की न्यूनतम आयु 18 वर्ष निर्धारित की गई। इस निर्धारित आयु से कम उम्र में विवाह करना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया।

4. विधवा विवाह– 19वीं शताब्दी के पूर्व भारत में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। अल्पायु में ही कन्याओं का विवाह कर दिया जाता था। कम आयु की कन्या के अधिक आयु के व्यक्ति से विवाह के कारण विधवाओं की संख्या बढ़ गयी। कई कन्याएँ तो यौवनावस्था में ही विधवा हो जाती थीं इन विधवाओं को समाज में बहुत अधिक उपेक्षा एवं यातना का शिकार होना पड़ता था। अतः समाज सुधारक विधवाओं के पुनर्विवाह की वकालत करने लगे। विधवा विवाह के पक्ष में माहौल बनाने के लिए सर्व सराहनीय प्रयास कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य ईश्वर चन्द्र विद्यासागर द्वारा किया गया। उन्होंने लोगों को बताया कि वेदों द्वारा भी विधवा विवाह की अनुमति प्रदान की गयी है। इस तारतम्य में उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन करते हुए कई लेख एवं निबन्ध लिखे एवं प्रमाण भी प्रस्तुत किये। उन्होंने समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हुए अपने पुत्र का विवाह एक विधवा महिला से करवा दिया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह के समर्थन में एक सहस्र हस्ताक्षर कराकर प्रार्थना पत्र के साथ ब्रिटिश सरकार को भेजा। अन्ततः उनके प्रयास सार्थक हुए और 1856 ई0 में सरकार ने विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित कर दिया।

विधवा विवाह के प्रयासों की श्रृंखला में पश्चिम भारत में पूना में फग्युर्सन कॉलेज के प्रोफ़ेसर डी0के0 कर्वे एवं दक्षिण भारत में मद्रास में वीर सालिंग्म पन्तलू ने भी उल्लेखनीय भूमिका अदा की। प्रो0 कर्वे को विधवा पुनर्विवाह संस्था का सचिव बनाया गया एवं उन्होंने विधुर होने पर स्वयं एक विधवा से विवाह किया। 1899 में प्रो0 कर्वे ने पूना में एक विधवा आश्रम भी स्थापित किया और उनके जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध कराये। उन्होंने एक स्त्री विश्वविद्यालय की स्थापना भी की। मद्रास में वीर सलिंगम पन्तलू ने भी विधवा आश्रम खोलकर सराहनीय कार्य सम्पन्न किया। इन प्रयासों से समस्त भारत में विधवा विवाह के पक्ष में माहौल बनने लगा एवं विभिन्न स्थानों पर विधवाश्रम खोले गये और विधवाओं की शिक्षा आदि के भी प्रबन्ध किये गये।

शिक्षित विधवाओं की नौकरी की भी व्यवस्था की गयी। निश्चित रूप से आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति की दृष्टि से विधवा पुनर्विवाहों का सम्पन्न होना एक क्रांतिकारी क़दम साबित हुआ।

5.3.2 आधुनिक भारत में महिला शिक्षा के प्रयास :

मुग़ल साम्राज्य के पतन के पश्चात 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक स्त्री शिक्षा की हम कोई व्यवस्था नहीं पाते। मध्यकाल की तरह केवल अभिजात कुलीन परिवारों में ही कन्याओं को सीमित शिक्षा दी जाती थी। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुलीन भारतीय परिवारों, समाज सुधारकों एवं ईसाई मिशनरियों ने स्त्री शिक्षा की ओर रूचि दिखाई। ईसाई धर्म प्रचारकों ने अन्य स्कूलों के साथ–साथ 1819 ई0 में 'कलकत्ता तरूण स्त्री शिक्षा सभा' की स्थापना की। इसके साथ ही अन्य प्रान्तों में भी ईसाई मिशनरियों के द्वारा कन्या स्कूलों की स्थापना की गयी। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के भरसक प्रयास किए। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयासों से 1857 से 1858 के बीच बंगाल में अनेक बालिका विद्यालय खोले गये। 1849 ई0 में कलकत्ता में एक हिन्दू बालिका स्कूल खोला गया। 1849 ई0 में वाराणसी में भी एक कन्या विद्यालय खोल गया। बम्बई के एलफिंस्टन संस्थान ने भी स्त्री शिक्षा हेतु प्रयास किये।

1882 ई0 में हण्टर कमीशन ने स्त्री शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने की सिफ़ारिश की। इसकी सिफ़ारिशें कार्यान्वित किये जाने से स्त्री शिक्षण संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हुई। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 1907 ई0 में भारतीय महिला संस्था की स्थापना के पश्चात स्त्री शिक्षा में प्रगति हुई। श्रीमती राना डे के द्वारा पूना में 1909 पूना सेवा सदन स्थापित किया गया एवं वी0एम0 मालावारी ने 1908 ई0 में सेवा सदन सोसायटी की स्थापना करके स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। 1893 ई0 में पूना में फर्गुसन कॉलेज के प्रो0 डी0के0 कर्वे ने हिन्दू विधवा गृह स्थापित किया। उन्होंने महिला विद्यालय की स्थापना मुख्य रूप से विधवाओं को शिक्षित करने के लिए की ताकि वे नर्स एवं अध्यापिका बन सके। उन्हीं के प्रयासों से 1916 ई0 में पुणे में देश का प्रथम महिला विश्वविद्यालय खोला गया।

1914 ई0 में स्थापित महिला चिकित्सा सेवा ने नर्स एवं मिडवाइफ़ के प्रशिक्षण, शिशु एवं मातृत्व सुरक्षा हेतु उल्लेखनीय प्रयास किये। 1916 ई0 में दिल्ली में लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज ने स्त्रियों को चिकित्सा विज्ञान की स्नातक उपाधि (MBBS)

की डिग्री प्रदान की। 1917 में महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। वे चुनावों में खड़ी होने लगीं तथा सरकारी सेवाओं में भी आ गयीं। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत स्त्रियों को केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभाओं में स्थान मिले। 1937 ई0 के चुनावों में विजयी होकर कुछ महिलाएँ मन्त्री एवं संसदीय सचिव भी बनीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 19वीं शताब्दी में स्त्री शिक्षा हेतु किए गए प्रयास सार्थक सिद्ध हुए तथा 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था की गई।

5.3.3 नारी मुक्ति आन्दोलन :

नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ समाज सुधारकों के द्वारा किया गया। 1920–30 ई0 तक महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयास अधिकांशतः पुरूष वर्ग द्वारा ही किये गये। 1930 ई0 के पश्चात नारी मुक्ति आन्दोलन में उस समय नवीन मोड़ आ गया जबकि इस आन्दोलन का नेतृत्व महिलाओं के हाथ आ गया। इसके पश्चात महिलाओं ने अपनी स्थिति में विभिन्न क्षेत्रों में सुधार हेतु प्रयास एवं आन्दोलन किये और अपनी स्वतंत्रता हेतु संघर्ष किया। स्वतंत्रता के पश्चात प्रत्येक वयस्क स्त्री को मताधिकार प्राप्त हुआ। 1954 ई0 में 'सिविल मेरिज एक्ट' पारित किया गया जिसके तहत विभिन्न जाति, धर्म के बीच अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता दी। 1955 ई0 में 'हिन्दू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम पारित किया गया। इसके तहत स्त्री पुरूष दोनों को ही बहुविवाह वर्जित कर दिया गया। कुछ प्रमुख कारणों के आधार पर विवाह विच्छेद की भी व्यवस्था की गयी। यदि महिला विवाह विच्छेद के पश्चात पुनर्विवाह नहीं करती तो दूसरा पक्ष उसके जीवन निर्वाह हेतु एक निश्चित धनराशि प्रदान करेगा। 1956 ई0 में ही हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम भी पारित किया गया जिसके तहत पुत्रियों को भी पुत्र के समान पिता की सम्पत्ति में से अधिकार दिया गया। 1956 में ही स्त्रियों का अनैतिक व्यापार अधिनियम भी पारित किया गया जिसके तहत वेश्यावृत्ति पर कानूनी रोक लगाई गई। 1961 ई0 में दहेज विरोधक अधिनियम पारित किया गया। इसके तहत विवाह के समय दहेज की शर्त को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। इस अधिनियम के तहत दहेज लेने व दबाव डालने वाले व्यक्ति को छः माह के कारावास एवं पाँच हज़ार रू0 के अर्थदण्ड की व्यवस्था की गयी। भारतीय संविधान में स्त्रियों को सरकारी नौकरी पाने एवं पुरूषों के समान वेतन पाने का अधिकार प्रदान किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु जो भी प्रयास किए गए, उनमें अधिकांशतः सफलता प्राप्त हुई। आज महिलाएँ

पुरूषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में चाहे राजनीति हो या प्रशासन, समान भूमिका निभा रही है। महिलाएँ घरेलू काम–काज तक सीमित न रहकर प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई दे रही हैं। देश की प्रधानमंत्री एक महिला रह चुकी है। राज्यपाल का पद भी महिलाओं द्वारा सुशोभित किया गया है। वर्तमान में भारत के कई प्रदेशों की मुख्यमंत्री भी महिलाएं हैं। पंचायतों एवं सरकारी सेवाओं में महिलाओं के आरक्षण की व्यवस्था कर दी गयी है। अतः नारी मुक्ति आन्दोलन की सार्थकता धीरे–धीरे सिद्ध हो रही है।

5.3.4 भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका :

आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति का अध्याय उस समय तक अधूरा ही रहेगा जब तक कि हम भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन न करें। 1857 ई0 के विद्रोह से लेकर 1947 तक चले स्वतंत्रता संघर्ष में महिलाओं ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। 1857 के विद्रोह में रानी लक्ष्मीबाई तथा बेगम हज़रत महल ने बड़ी वीरता से क्रांतिकारियों का नेतृत्व किया। इसके बाद भीकाजी रूस्तम कामा, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृतकौर, अरूणा आसिफ अली, कल्पना दत्त, कैप्टन लक्ष्मी, दुर्गाबाई देशमुख आदि महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गांधी का भी स्त्रियों की उन्नति में विशेष योगदान रहा। असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उनके आहवाहन पर हजारों स्त्रियों ने भाग लिया। अपने घरों से बाहर निकलकर उन्होंने जुलूसों, प्रदर्शनों तथा जन सभाओं में भाग लिया। उनमें से अनेक स्त्रियाँ जेल गयीं। अनेक स्त्रियों ने प्रदर्शनों में भाग लेकर लाठियाँ खायीं। कुछ ने समाज सेविकाओं के रूप में विभिन्न कष्ट सहन करते हुए सामाजिक और राष्ट्र निर्माण के कार्यों में सहयोग दिया।

आधुनिक काल में विभिन्न विदेशी राज्यों से भारत का सम्पर्क बढ़ा। वहाँ की स्त्रियों के आन्दोलनों, विचारों, वस्त्रों तथा पुरूषों से समता करने की भावना ने भी आधुनिक भारतीय स्त्रियों के उद्धार में बड़ा भाग लिया है। सामाजवादी तथा साम्यवादी विचारधाराएँ भी स्त्री–पुरूष की समता पर बल देती है। पाश्चात्य शिक्षा तथा विचारधारा ने भी भारतीय स्त्रियों की स्थिति को सुधारने में बहुत बड़ा भाग लिया है।

5.4 सारांश :

इस प्रकार सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों, व्यक्तिगत प्रयत्नों तथा सरकार से संरक्षण प्राप्त करके स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। आधुनिक समय में अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्रों में स्त्रियाँ कार्य कर रही हैं। इसके अलावा

स्त्रियों के सभी वर्गों में अपने अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों के प्रति सजगता है। ये सभी परिस्थितियाँ इंगित करती हैं कि भविष्य में भारत में स्त्रियों की स्थिति बेहतर होगी। परन्तु सभी कुछ उचित और सही स्वीकार नहीं किया जा सकता अभी भी भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति, बलात्कार, विधवाओं के पुनर्विवाह में संकोच, अल्पायु विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों तथा महिलाओं का शोषण करने वाले कारण विद्यमान हैं। स्त्रियों की शिक्षा के साधन भी पर्याप्त नहीं हैं। इस कारण भारत की स्त्रियों का बहुमत अभी भी शोषित वर्ग में सम्मिलित हैं, इस हेतु पर्याप्त जागरूकता की आवश्यकता है।

5.5 महत्वपूर्ण बिन्दू :

- भारतीय इतिहास में 19वीं शताब्दी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह शताब्दी भारत के इतिहास में सुधारों के युग के रूप में जानी जाती है।
- 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, डी0के0 कर्वे आदि समाज सुधारकों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- 1829 ई0 में क़ानून बनाकर सती प्रथा को अवैधानिक घोषित कर दिया।
- शारदा अधिनियम के द्वारा विवाह हेतु कन्या की न्यूनतम आयु 14 वर्ष एवं लड़के की आयु 18 वर्ष निर्धारित की गई।
- 1856 ई0 में 'विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' पारित किया गया।
- 1955 ई0 में हिन्दू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम पारित किया गया।
- 1961 ई0 में दहेज निरोधक अधिनियम पारित किया गया।

शब्दावली :

1. बुर्जुआ वर्ग– वह रूढ़िवादी मध्यमवर्ग या समुदाय जिसकी सामाजिक और आर्थिक मान्यताएँ वस्तु और पूँजी में केन्द्रित होती हैं।
2. सती प्रथा– पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी अपने पति की चिता के साथ जलकर अपने प्राण त्याग देती थी। इसको सती प्रथा कहा जाता था।
3. अवैधानिक– जो संविधान के नियमों के अनुरूप न हो।
4. कुरीतियाँ– समाज या व्यक्ति को हानि पहुँचाने वाली अनुचित रीति या कुप्रथा।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. आधुनिक भारत में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु क्या प्रयत्न किये गये और वे कहाँ तक सफल है ?
2. स्त्री शिक्षा के लिए किये गये प्रयासों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. नारी मुक्ति आन्दोलन पर एक निबन्ध लिखिए।
2. सती प्रथा को रोकने के लिए क्या प्रयास किये गये ?
3. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
4. आधुनिक भारत में मध्यम वर्ग के उदय पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. विधवा विवाह के प्रबल समर्थ थे–

(अ) तिलक (ब) दादा भाई नौरोजी

(स) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (द) स्वामी विवेकानन्द

2. 'सती प्रथा उन्मूलन कानून' किस वर्ष लागू हुआ ?

(अ) 1829 (ब) 1831 (स) 1820 (द) 1835

3. विधवा पुनर्विवाह एक्ट कब पारित हुआ ?

(अ) 1860 (ब) 1850 (स) 1856 (द) 1865

4. शारदा एक्ट कब पारित हुआ ?

(अ) 1929 (ब) 1901 (स) 1856 (द) 1890

5. प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

(अ) इलाहाबाद (ब) पुणे (स) कलकत्ता (द) लाहौर

उत्तर– (1) स, (2) अ, (3) स, (4) अ, (5) ब

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. Kenneth W. Jones : The New Cambridge History of India (Socio, Religious Reform Movement in British India).
2. बी0एल0 ग्रोवर, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास।
3. राम लखन शुक्ल : आधुनिक भारत का इतिहास : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
4. विपिन चन्द्र : आधुनिक भारत का इतिहास।

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY -119 N

भारत का सांस्कृतिक इतिहास
(1206 ई0–1947 ई0)

खण्ड
तृतीय – नई सामाजिक शक्तियों का विकास

इकाई– 1 – दलित आन्दोलन	**317**
इकाई– 2 – अन्य पिछड़े वर्गो एवं जातियों का आन्दोलन	**332**
इकाई– 3 – आदिवासी आन्दोलन	**344**
इकाई– 4 – माहिला आन्दोलन	**357**
इकाई– 5 – सामाजिक न्याय एवं प्रातिनिधित्व	**369**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

भारत का सांस्कृतिक इतिहास (1206 ई.–1947 ई.)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड एवं इकाई	सम्पादक
डॉ.ऋषभ कुमार, सहायक आचार्य, इतिहास जी.डी.बिन्नानी पी.जी.कालेज,मिर्जापुर	प्रथम खण्ड 1,2,3,4,5 षष्टम खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.सन्तोषा कुमार आचार्य,इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ.समन जेहरा जैदी सहायक आचार्य, इतिहास जी.एफ.कालेज,शाहजहाँपुर	द्वितीय खण्ड 1,2,3,4,5 तृतीय खण्ड 1,2,3,4,5 पंचम खण्ड 1,2,3,4,5	
डॉ.राम कुमार यादव, सह आचार्य, इतिहास, राजकीय पी.जी.कालेज,सांगीपुर, ,जौनपुर	चतुर्थ खण्ड 1,2,3,4,5	प्रो.अरूप चक्रवर्ती आचार्य (से.नि.)इतिहास विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

मई, 2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN - 978-93-94487-56-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–281003

इकाई प्रथम –दलित आन्दोलन

इकाई रूपरेखा

1.2 प्रस्तावना

1.3 उद्देश्य

1.4 दलित शब्द और दलित होने का अभिप्राय

1.5 दलित आन्दोलन के उभार के कारण और प्रकार

1.6 प्रमुख दलित आन्दोलन

1.7 दलित आंदोलन और अम्बेडकर

1.8 दलित आंदोलन और महात्मा गांधी एवं कांग्रेस

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 इस खण्ड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

औपनिवेशिक काल में भारत में कई सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ। सामूहिक रूप से चलाये जाने वाले इन आंदोलनों का उद्देश्य उन असहनीय और अमानवीय परिस्थितियों को बदलना था जिन्हें वह समाज कई शताब्दियों से झेल रहा था। औपनिवेशिक काल में उदारवाद और मानववाद की विचारधारा से प्रेरित होकर पीड़ित समूह के शिक्षित लोगों ने संगठन और कार्यक्रम के माध्यम से सामाजिक आंदोलन का नेतृत्व कर सामाजिक परिवर्तन करने का प्रयास किया। इन आंदोलनों का उद्देश्य केवल सामाजिक प्रस्थिति में ही परिवर्तन करना नहीं था बल्कि राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन करना भी था। ऐसे ही सामाजिक आंदोलन के रूप में दलित आंदोलन आधुनिक भारत में दलितों की प्रस्थिति और भूमिका में सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से शुरू हुआ। दलित समाज विगत कई शताब्दियों से समाज के सवर्णों द्वारा शोषित और

अमानवीय व्यवहार को झेल रहा था। भारतीय समाज में हर तरह से अलग–थलग कर दिये जाने के साथ ही उसका दमन भी आम बात थी। इस ऐतिहासिक शोषण और दमन को समाप्त करने एवं दलितों के लिए समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, अधिकारों की प्राप्ति आदि के लिए दलित आंदोलन की शुरूआत औपनिवेशिक काल में हुई।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि

1. दलित शब्द और दलित होने का क्या तात्पर्य होता है
2. दलित आंदोलन के पीछे की सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है
3. दलित आंदोलन के प्रमुख नेता और उनके प्रमुख योगदान क्या है
4. दलित आंदोलन के विभिन्न स्वरूप और चरणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

1.3 दलित शब्द और दलित होने का अभिप्राय

पदानुक्रम पर आधारित विभाजित भारतीय समाज में सबसे निचले स्तर पर स्थित अधिकारविहीन और सामान्य अधिकारों से भी वंचित समुदाय को दलित की संज्ञा दी गयी है। दलित शब्द का अर्थ जमीन में दबा हुआ और टुकड़ो में तोड़ा हुआ, दमित आदि होता है। दलित शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ज्योतिबा फुले ने महाराष्ट्र में गैर ब्राह्मण आन्दोलन के दौरान अस्पृश्य जातियों के लिए किया। पंचम, अवर्ण, चमार, आदिद्रविड़, नामशूद्र, अन्त्यज, अतिशूद्र आदि नामों का उपयोग दलित के सन्दर्भ में किया जाता है। वर्तमान में दलित समुदाय के लिए भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया जाता है। महात्मा गांधी ने दलितों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया।

भारतीय समाज प्राचीन काल से वर्ण व्यवस्था के आधार पर संगठित है। वर्ण व्यवस्था के उद्गम को ईश्वरीय मानते हुए समाज का विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में किया गया था। शुरूआत में वर्ण व्यवस्था कर्म

आधारित थी परन्तु कालान्तर में इसके जन्म आधारित होने से समाज कठोर और रूढ़ग्रस्त हो गया। कालांतर में वर्णव्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी जिसमें जन्म के आधार पर व्यक्ति की जाति निर्धारित होने लगी और उसमें परिवर्तन संभव नहीं था। जाति के आधार पर समाज में अधिकार और विशेषाधिकार का निर्धारण जन्म से ही होने लगा। उच्च जाति के लोग विशेषाधिकार प्राप्त और सर्वसुविधा संपन्न तथा निम्न जाति के लोग निर्योग्यताएँ और निषेधों के शिकार समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी रूपों में पतित और वंचित हो गये। वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप जाति व्यव्स्था थी जिसमें सामाजिक गतिशीलता अवरूद्ध थी। जाति व्यवस्था का विकृत रूप अस्पृश्यता के रूप में सामने आया जिसमें कुछ जातियों का स्पर्श, उनको देखना यहाँ तक कि उनको देख लेना भी उच्च जातियों के लिए अपवित्र होना माना गया। दैनिक जीवन में दलितों के ऊपर कई प्रकार के सामाजिक प्रतिबंध लागू थे। दलित व्यक्ति अस्पृश्य, असभ्य और यहाँ तक कि अदर्शनीय भी था। दलितों की गणना जानवरों के साथ करने के उल्लेख भी प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। दलित गांव के बाहर रहते थे, उनकी अलग भाषा होती थी। गांव में प्रवेश के लिए समय निर्धारित था। दिन में दलित का प्रवेश प्रतिबंधित था। दलित निम्न स्तर के कार्य मल ढोना, मरे हुए जानवरों को हटाना आदि सफाई के कार्य करता था।उल्लेखनीय है कि दलितों का निम्नतम माने जाने वाले व्यवसाय में लगा होना स्वैच्छिक न होकर आरोपित था। सार्वजनिक उत्सवों में लागों के झूठे पत्तल उठाना और झूठे भोजन पर ही दलित को जीवन आधारित था। दलितों का निवास प्रायः गांव से दूर होता था ताकि उनके सम्पर्क की वायु भी उच्च जातियों को अपवित्र न कर दे। दलित सार्वजनिक मार्गों, कुओं, जलाशयों, धर्मशालाओं के प्रयोग से वंचित थे। उन्हें जीवन की मूलभूत आवश्यकता पानी के लिए गंदे कीचड़ युक्त जल स्त्रोत का उपयोग करना होता था। दलितों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। दलितों का उपनयन संस्कार नहीं होता था। दलितों के बच्चे सवर्णों के बच्चों के साथ विद्याध्ययन नही ंकर सकते थे।वे योग्य होते

हुए भी कोई अन्य व्यवसाय नहीं अपना सकते थे। तमाम प्रतिबंधों के साथ ही दलित को मुक्ति प्राप्त होने पर भी प्रतिबंध था। धार्मिक रूप से भी दलित विपन्न की स्थिति में थे। उन्हें यज्ञ करने, धार्मिक विधि विधान का पालन करने, मंदिरों में प्रवेश, ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने का अधिकार नही था। समग्र रूप से विद्वान एन कुबेर के शब्दों में "दलित जातियाँ सामाजिक रूप से पतित, आर्थिक दृष्टि से विपन्न, राजनीतिक दृष्टि से उच्च जातियों के सेवक और शैक्षणिक और सांस्कृतिक अवसरों से स्थायी रूप से वंचित बने रहे"। वर्तमान में कानूनी और नैतिक सभी रूपों में दलित अस्पृश्य नहीं है फिर भी समाज में व्यवहारतः अस्पृश्यता का प्रचलन होता है। उच्च जातियों के द्वारा आज भी घोड़े पर चलने, सवर्णों के क्षेत्र से बारात निकालने पर मार–पीट और यहाँ तक कि मौत का भी सामना करना पड़ता है।

1.4 दलित आन्दोलन के उभार के कारण और प्रकार

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाज में जाति विभाजन को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक रूप से शोषित वंचित समुदायों के लिए हितकारी उपाय करने प्रारम्भ किये। दलित समूह ने सरकार की इस सहयोग की नीति से उत्साहित होकर अपनी शिकायतों को सार्वजनिक करना शुरू किया। इसके साथ ही स्वतंत्रता, समानता के मूल्यों से लैस पश्चिमी शिक्षा ने दलितों को अपने अधिकरों के लिए संगठित होने की चेतना दी। 19वीं सदी की शुरूआत में शुरू हुए उच्च जाति के लोगों द्वारा शुरू जाति सुधार आंदोलन सहानुभूति तो रखता था परन्तु क्रियान्वयन के मोर्चे पर कोई ठोस उपलब्धि देखने को नहीं मिली न ही दलित समाज को यह सामाजिक सुधार आन्दोलन आकर्षित कर पाया। उच्च जाति के शोषण और दमन के खिलाफ प्रबल दलित आंदोलन की शुरूआत फुले के द्वारा की गयी। फुले ने जाति व्यवस्था के आधार धर्म और पुराणों की आलोचना कर ब्राह्मवाद के वैचारिक आधार को नष्ट करने की कोशिश की।

दलितों की मूल समस्या अस्पृश्यता और समाज में समान अवसर, समानता, स्वतंत्रता, राजनीति और नौकरियों में आरक्षण के जरिये प्रतिनिधित्व के मुद्दे

पर दलित आंदालन हुए। इन सभी में घनश्याम शाह के अनुसार दलित आंदोलन का मूल केन्द्र अस्पृश्यता रहा है। शाह आगे दलित आंदोलनों को दो श्रेणियों – 1. सुधारवादी 2. वैकल्पिक आंदोलनों में वर्गीकृत किया है। सुधारवादी आंदोलन जाति व्यवस्था में सुधार और छुआछूत की समस्या का समाधान करने पर बल देते है। इन आंदोलनों में भक्ति आंदोलन, नव वेदांतिक आंदोलन, 19वीं सदी के सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन, संस्कृतिकरण आदि आते हैं। जबकि वैकल्पिक आंदोलनों का उद्देश्य उस सामाजिक संरचना को ही परिवर्तित करने का होता है जो जाति व्यवस्था का आधार होता है। इसमें धर्म परिवर्तन के माध्यम से या शैक्षिक–आर्थिक उन्नति और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करके पुरानी व्यवस्था के वैकल्पिक सामाजिक संरचना बनाने का प्रयास किया जाता है। कालांतर में शाह ने दलित आंदोलनों का वर्गीकरण निम्न श्रेणियों के अनुसार किया – 1. सांस्कृतिक चेतना के अन्दर आन्दोलन 2. प्रतिस्पर्धी विचारधारा एवं गैर हिन्दू पहचान आन्दोलन 3. बौद्ध दलित आन्दोलन एवं 4. प्रतिकार/प्रतिकूल और दलित अस्मित आन्दोलन। इनमें से प्रथम तीन आन्दोलन धार्मिक है जबकि चौथा आन्दोलन वर्ग से सम्बन्धित है। पटनकर और आमवेडेट दलित आंदोलनों को 1. जाति 2. वर्ग आन्दोलनों में विभाजित करते हैं।

1.5 प्रमुख दलित आंदोलन

दलितों की अमनावीय और घृणित स्थिति के विरूद्ध प्राचीन काल से संघर्ष होता रहा है। सर्वप्रथम गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म में अस्पृश्यों को भी स्थान दिया। दलितों की समानता और मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले बुद्ध पहले व्यक्ति थे। सदियों तक अस्पृश्यों की स्थिति में सुधार के लिए बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रयास होते रहे। रामानुज ने 11वीं सदी में स्वयं द्वारा स्थापित धार्मिक स्थलों के द्वार अस्पृश्यों के लिए खोल दिए। रामानुज ने एक अस्पृश्य को अपना शिष्य भी बनाया था।दलितों को समाज में समानता का स्तर दिलाने और मुख्यतः धार्मिक स्तर पर सभी जातियों के एकसमान होने का दावा करने वाले भक्ति आन्दोलन की शुरूआत मध्यकालीन भारत में

15वी–16वीं सदी में हुई। भक्ति आंदोलन भक्ति के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग था। भक्ति आंदोलन किसी भी प्रकार के भेदभाव, उँच–नीच, अमीर–गरीब आदि को मान्यता नहीं दी। भक्ति आंदोलन ने तत्कालीन हिन्दू समाज की जाति प्रथा की कुरातियों अस्पृश्यता, भेदभाव को कम कर दलितों के लिए सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया। भक्ति आंदोलन की दो धाराएँ सगुण और निर्गुण थी। निर्गुण धारा के महान संत कबीर ने जाति, धर्म और रंग पर आधारित सभी भेदभावों का विरोध किया। एक ईश्वर में विश्वास और मानव जाति को एक परिवार मानने के विचार ने मानव मानव के बीच अंतर एवं अलगाव का खण्डन किया। महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि ने भी समाना एवं भाईचारा पर बल देकर दलितों की सामाजिक स्थिमि में सुधार का प्रयास किया। अब दलितों के लिए भी भक्ति मार्ग से मुक्ति संभव थी।अब दलित भी भक्ति के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त कर सकते थे। मध्यकालीन भारत में धर्म परिवर्तन की ओर उन्मुख शूद्रों को हिन्दू समाज में एकीकृत करने का प्रयास भक्ति आन्दोलन के माध्यम से किया गया।इसके साथ ही भक्ति आंदोलन से दलितों को अपने अधिकारें के सम्बंध में जागरूकता आयी और उन्होने नामदेव, रामानन्द आदि संतो को महत्ता प्रदान की।

उपर्युक्त प्रयासों के पश्चात दलितों की स्थिति में प्रभावी परिवर्तन नहीं हुआ और अंग्रेजों ने भारतीय समाज को असभ्य और अमानवीय दिखाने के लिए जाति प्रथा की कुरातियों और अस्पृश्यता को मुख्य हथियार बनाया। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोगों ने उदारवादी विचारधारा के आलोक में विश्लेषण कर जाति प्रथा की कुरीतियों को समाप्त कर सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलन के माध्यम से सुधार का प्रयास किया। सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलन की एक धारा पुनउत्थानवादियों की भी थी जो यह मानती थी कि प्राचीन वैदिक समाज में मूलतः जाति प्रथा नहीं थी। अस्पृश्यता की समस्या को इन नव वेदान्तवादियों ने मूल हिन्दू समाज की विकृति माना और इसमें परिवर्तन के लिए प्रयास किये। दयानन्द सरस्वती और उनका संगठन आर्य समाज प्रमुख

नव वेदान्तिक आन्दोलन था जिसने अस्पृश्यता को दूर करने के लिए कई शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की और दलितों के कल्याण के लिए भी कार्य किये। दयानन्द सरस्वती के अनुसार जो ब्राह्मण अपने कार्य के योग्य नहीं रहता वह शूद्र हो जाता है और जो शूद्र विद्याध्ययन करता है वह ब्राह्मण हो जाता है। दयानन्द ने जाति व्यवस्था के ईश्वरीय होने का खण्डन किया और इसे राजनीतिक संस्था माना।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में दलित चेतना के विस्तार और दलितों में नेतृत्व के उदय में प्रबल दलित आंदोलनों को जन्म दिया। अभी तक सुधार की प्रक्रिया उपर से आरोपित थी परन्तु अब पीड़ित समुदाय स्वयं जागरूक होकर अपने अधिकारों के लिए संगठित होने लगा था। 19वी सदी के अन्तिम भाग में जातिगत संगठनों का निर्माण होना प्रारम्भ हो चुका था। दलितों में शिक्षा के प्रसार, तर्कणा के विकास, संगठन और आन्दोलन की ओर मानव अधिकारों का दावा प्रस्तुत करने के लिए आत्मावलम्बन की चेतना पनपी। अब दलित समुदाय अपने खिलाफ होने वाले हर शोषण और दमन का विरोध करने को तैयार था। व्यापार वाणिज्य के विकास, नगरीकरण, संचार–यातायात के साधनों के विकास, विद्यालयों, चिकित्सालयों की स्थापना ने जातिगत प्रतिबंधों और निषेधों को कमजोर कर दलितों को संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

प्रथम जाति विचारक के रूप में प्रसिद्ध ज्योतिबा फुले (1827–1890) का गैर ब्राह्मण आन्दोलन सुधारवादी आन्दोलनों से इतर क्रान्तिकारी आन्दोलन की तरह है। फुले ने जाति व्यवस्था और ब्राह्मण धर्म के वैचारिक आधार को ही चुनौती दी। फुले धर्म को जाति व्यवस्था और दलितों के शोषण का मूल कारण मानते थे। फुले ने अपनी पुस्तक गुलामगिरी के माध्यम से बताया कि ब्राह्मण भारत के मूल निवासी नहीं थे। ये बाहर से आये और यहाँ के मूल निवासियों को शूद्र का दर्जा देकर उनके उपर धर्म के माध्यम से आधिपत्य स्थापित कर लिया। फुले स्वयं दलित होने के नाते दलितों की मनोदशा और पीड़ा को अच्छी तरह समझ सकते थे। फुले ने दलितों को आर्य आगमन के पूर्व की धार्मिक व्यवस्था को अपनाने का निर्देश दिया। फुले ने खुलेआम

मूर्तिपूजा,कर्मकाण्ड, यज्ञ, पुरोहितों, स्वर्ग आदि की आलोचना की। फुले के संगठन और शिक्षा के लिए किये गये प्रयासों से दलितों में नवीन चेतना का उदय हुआ और उनमें आत्मविश्वास जगा।

राष्ट्रीय आंदोलन के उदय और विकास से भी दलित आन्दोलन को बल मिला। राष्ट्र चेतना के विकास में जाति प्रथा को अवरोध के रूप में देखा गया और इसके सुधार को राष्ट्रीय आंदोलन के लिए आवश्यक माना जाने लगा। 20वीं सदी के शुरूआत में जाति के प्रतिबंधों और निषेधों को समाप्त करने की जगह जाति के उन्मूलन की मांग जोर पकड़ने लगी। के नटराजन ने सर्वप्रथम अस्पृश्यमता को जाति प्रथा का अनिवार्य तत्व बताया और अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए जाति के उन्मूलन की बात की। 20वीं सदी में जिस स्वतंत्रता, समानता, मानव अधिकार, मूल अधिकार के आधार पर राजनीतिक न्याय की मांग की जा रही थी उन्हीं आधारों का प्रयोग अब सामाजिक न्याय के लिए किया जाने लगा। 1906 में एन.जी.चन्दावरकर और बी.आर. शिन्दे ने दलित वर्ग मिशन सोशायटी की स्थापना की। इस संगठन ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किया। इन लोगों का मानना था कि दलितों के उद्धार के लिए शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दलितों के नागरिक अधिकारों के रूप में विद्यालयों में प्रवेश, कुओं और जलाशयों का प्रयोग, सार्वजनिक मार्गों का उपयोग करने की बात नारायण चन्दावरकर ने की। उच्च वर्णों के इन मानवतावदी प्रयासों ने दलितों के अन्दर अपने अधिकारों के लिए चेतना का उग्र विकास किया और अब दलितों के बीच जाति विरोधी और हिन्दू धर्म विरोधी आन्दोलन के रूप में आदि द्रविड़, आदि आन्ध्र, आदि हिन्दू, आदि धर्म, आत्मसम्मान आंदोलनों का उद्‌भव हुआ। 1902 में केरल में श्री नारायण गुरू द्वारा श्री नारायण धर्म परिपालन योगम एक जाति एक धर्म एक ईश्वर के मूलमंत्र के साथ केरल के दलितों के उत्थान के लिए शैक्षिक संस्थओं और धार्मिक स्थलों की स्थापना की। आदिधर्म और आदि धर्म आन्दोलनों का मानना था कि हिन्दू धर्म का वर्तमान स्वरूप आर्य आक्रमणकारियों की देन है और शूद्र एक आर्यों के आगमन से पहले यानि

हिन्दू धर्म के पहले से भारत में स्थापित थे। इसीलिए दलितों ने स्वयं को आंध्र में आदि आन्ध्र, पंजाब में आदि धर्मी, उत्तर प्रदेश में आदि धर्मी, कर्नाटक में आदि कर्नाटक, तमिलनाडु में आदि द्रविड़ कहलाना शुरू किया। दलित आंदोलन में सतनामी आन्दोलन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सतनामी सम्प्रदाय उत्तर भारत में मध्यकाल से ही पाया जाता था। छत्तीसगढ़ में सामाजिक धार्मिक सुधार के रूप में दलितों द्वारा समानता के लिए सतनामी आंदोलन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। छत्तीसगढ़ में सतनामी सम्प्रदाय के संस्थापक घासीदास चमार जाति के सदस्य थे जो चमड़े का निम्न कार्य करते थे। 19वीं सदी में इस समुदाय के लोगों द्वारा चमड़े का व्यवसाय छोड़ने के पश्चात भी उच्च वर्ण के लोग इन्हें अपवित्र ही मानते थे।घासीदास ने विरोध करेन के लिए ब्राह्मणवाद के प्रतीक हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों को कूड़े के ढेर में फेंक दिया था। घासीदास ने सतनामी पंथ के माध्यम से इन छत्तीसगढ़ी चमारों को एक अलग सामाजिक और धार्मिक पहचान दिलायी। कालांतर में यह सम्प्रदाय मुख्य सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावी हो गया।

1.6 अम्बेडकर और दलित आंदोलन

दलितों के मूल मानवीय अधिकारों एवं राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले नेताओं में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का योगदान अतुलनीय है। डॉ0 अम्बेडकर ने दलित समुदाय में जन्म लेकर अपने अध्ययन व अध्यवसाय के बल पर दलितों के सर्वोपरि मुक्तिदाता नेता के रूप में स्वयं को स्थापित किया। अम्बेडकर दलितों की स्थिति में सुधार तो चाहते थे परन्तु उपकार के रूप में नहीं बल्कि अधिकार के रूप में।

दलित मुक्ति के लिए संघर्ष करने की शुरूआत में अम्बेडकर का प्रयास संस्कृतिकरण के माध्यम से रहा। उन्होंने प्रारम्भ में यज्ञोपवीत धारण करने, गणपति उत्सव में शामिल होने, मन्दिर प्रवेश का प्रयास किया।इन शुरूआती प्रयासों में जब उन्हें लगा कि हिन्दू धर्म में दलितों का समायोजन संभव नहीं है तब उन्होंने दलितों की अलग पहचान बनाने के लिए उन्हें प्रत्यक्ष रूप से

संबोधित किया। अम्बेडकर ने दलितों के अन्दर शिक्षित होने, संगठित होने, आत्मनिर्भर होने के लिए प्रेरित किया।डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों की जीवनशैली मे परिवर्तन के लिए दलितों से मृत पशुओं को फेंकना, उनका मांस खाना, मदिरा पान आदि के त्याग और शिक्षित होने, वेशभूषा सही करने, स्वच्छता का पालन करने, आत्मसम्मान के साथ रहने का आह्वान किया।

अम्बेडकर ने सरकारी सहयोग से दलित उत्थान के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किया। दलितों के लिए एक नया मानव समाज निर्मित करने के लिए अम्बेडकर ने परंपरागत सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह करना उचित समझा। अम्बेडकर का आदर्श समाज जाति प्रथा के उन्मूलन पर आधारित होना था।

1930 ई0 के पश्चात अम्बेडकर ने संस्कृतिकरण के प्रयास छोड़ कर दलित समुदाय के शैक्षणिक उन्नयन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रस्थिति के उच्चीकरण का प्रयास किया। अम्बेडकर के नेतृत्व में चला दलित आंदोलन मुख्यतः राजनीतिक अधिकारों के संरक्षण पर केन्द्रित रहा।

डॉ0 अम्बेडकर 1930 के पश्चात राजनीतिक साधनों से दलितों के लिए सामाजिक–आर्थिक समता प्राप्त करने पर बल देने लगे। 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष अम्बेडकर ने वयस्क मताधिकार के साथ दलितों के लिए स्थानों का आरक्षण, शिक्षा के लिए विशेष प्रयास एवं सरकारी नौकरियों में दलितों के लिए भर्ती की मांग की। लेकिन जल्दी ही अम्बेडकर दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग करने लगे। उनका मानना था कि दलित अस्पृश्य हिन्दू समाज में पृथक समूह की तरह हैं, उन्हें हिन्दू समाज का अंग नहीं बनाया जा सकता। गोलमेज सम्मेलन में डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों की संस्कृति और अधिकारों की रक्षा के लिए मूलभूत अधिकारों की सूची बना कर अल्पसंख्यक उपसमिति के समक्ष रखा। यहीं पर अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की मांग की। अम्बेडकर के नेतृत्व में अस्पृश्यता उन्मूलन और दलित वर्गों की समस्याओं का आन्दोलन सामाजिक से ज्यादा राजनीतिक होता गया। जेलियट के अनुसार अम्बेडकर दलितों की स्थिति को

गुलामी और अमानवीयता से उच्चतम् संभव पर स्तर पर ले जाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने आधुनिक साधनों शिक्षा और कानूनी एवं राजनीतिक अधिकारों का मार्ग चुना।

1.7दलित आंदोलन और महात्मा गांधी एवं कांग्रेस

महात्मा गांधी अस्पृश्यता को भारतीय समाज की सबसे बड़ी बुराई मानते थे। उन्होंने अस्पृश्यता के उन्मूलन एवं अस्पश्यों के अधिकारों के लिए आजीवन संघर्ष किया। महात्मा गांधी ने दलितों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया। महात्मा गांधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का सबसे बड़ा कलंक मानते थे और स्वराज की प्राप्ति में इसे दूसरी बड़ी अड़चन मानते थे।महात्मा गांधी अस्पृश्यता उन्मूलन को समाज में शुद्धिकरण का आन्दोलन मानते थे। इसके उन्मूलन को महात्मा गांधी सामाजिक सुधार का मुद्दा मानते थे। महात्मा गांधी ने कांग्रेस के माध्यम से प्रस्ताव पारित करवा कर हिन्दुओं से अस्पृश्यता को दूर करने का आग्रह किया। कांगेसी स्वयंसेवकों की शपथ में अस्पृश्यता उन्मूलन और दलितों की सेवा करने का वचन भी शामिल किया गया। अस्पृश्मता उन्मूलन महात्मा गांधी के रचनात्मका कार्यक्रमों का हिस्सा था। महात्मा गांधी और अम्बेडकर के बीच अस्पृश्यों के हिन्दू समाज में स्थिति को लेकर मतभेद था। अम्बेडकर चाहते थे कि अस्पृश्यों को एक पृथक वर्ग मानकर उनको राजनीति आदि में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर समाज में स्थापित किया जा सकता है। जबकि गांधीजी का मानना था कि अस्पृश्य हिन्दू धर्म के अन्दर ही है और उनकी समस्या का समाधान हिन्दू धर्म के अन्दर ही होना चाहिए। इसी विचार के कारण 1932 के मैक्डोनाल्ड साम्प्रदायिक निर्णय में जब दलितों को पृथक निवार्चन का अधिकार दिया गया जो महात्मा गांधी यरवदा जेल में आमरण अनशन पर बैठ गये। अन्ततः मदनमोहनमालवीय आदि के प्रयासेां से अम्बेडकर और गांधीजी के बीच समझौता हुआ जिसमें पृथक निवार्चन की जगह दलितों को 148 सीटों का आरक्षण देने सम्बंधी पूना समझौता सम्पन्न हुआ। 1932 के पश्चात गांधीजी ने अस्पृश्यता विरोधी अभियान छेड़ दिया। गांधीजी ने हरिजन सेवक सघ की

स्थापना की। 1933 से हरिजन पत्रिक का प्रकाशन करना भी प्रारम्भ किया। दिसम्बर 1932 में गांधीजी ने कहा कि जब तक अस्पृश्यता कालातीत नहीं हो जाती तब तक न तो मुझे शांति मिलेगी और न उनको जिन्होंने इसका संकल्प लिया है। हरिजन सेवक संघ ने प्राथमिक विद्यालय स्थापित कर, छात्रावासों का प्रबंध कर, छात्रवृत्तियों की व्यवस्था कर, चिकित्सालयों की स्थापना, कुओं की स्थापना और मरम्मत आदि कार्यों से दलित उद्धार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये।

1937 के प्रांतीय चुनावों के पश्चात कांगेसी सरकारों ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए सार्वजनिक स्थलो के प्रयोग, मन्दिर प्रवेश आदि के लिए विधेयक पारित किये। दलितों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की। मद्रास सरकार ने सर्वप्रथम अस्पृश्यों को सार्वजनिक सेवाओं से वंचित रखने पर दंड का प्रावधान किया। 1946 तक महात्मा गांधी भी अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए जाति उन्मूलन के विचार की ओर झुकने लगे थे। उन्होंने अन्तर्जातीय खानपान तथा विवाहों का समर्थन करना आरम्भ कर दिया था। संविधान सभा के अप्रैल 1947 में तीसरे सत्र में घोषित किया गया कि किसी भी रूप में अस्पृश्यता का उन्मूलन किया जाना है और इसके आधार पर किसी भी प्रकार की निर्योग्यता का आरोपण अपराध माना जायेगा।

बोध प्रश्नः

1. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही एवं गलत के चिन्ह लगाएँ–

1. अस्पृश्यता को महात्मा गांधी हिन्दू समाज के लिए कलंक मानते थे।
2. दलित आंदोलन की शुरूआत उच्च जाति के सुधारकों द्वारा हुई।
3. नववेदान्तिक आन्दोलन अस्पृश्यता को मूल हिन्दू धर्म में विकृति मानता था।
4. अम्बेडकर ने दलित उत्थान के लिए पृथक निवार्चन की मांग की।

2. दलित आन्दोलन के विविध प्रकारों का उल्लेख करते हुए प्रमुख दलित आन्दोलनों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.8 सारांश

दलित आंदोलन की शुरूआत सुधारवादी आंदोलन के रूप मे उच्च जाति के सुधारकों द्वारा की गयी। दलित आंदोलन के प्रमुख मुद्दे समाज में दलित पहचान, मूल अधिकार,समता, सामाजिक न्याय से जुड़े हुए थे। ज्योतिबा फुले से दलित आंदोलन का नेतृत्व स्वयं दलितों के बीच से उत्पन्न होता है जिसके प्रभावस्वरूप दलितों के उद्धार को उपकार की जगह अधिकार के रूप मे लेने के लिए आंदोलनों की शुरूआत होती है जिसके सर्वप्रमुख डॉ0 भीमराव अम्बेडकर बने। अम्बेडकर ने दलितों को समाज में स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय दिलाने के लिए दलितों के शैक्षिक और आर्थिक उत्थान के साथ उनके राजनीतिक अधिकार और कानूनी अधिकार को दलित संगठनों के माध्यम से दिलाने का प्रयास किया। आधुनिक भारत में दलित आंदोलन ने दलितों की समस्याओं और उनके प्रतिनिधित्व को मुख्य चर्चा का विषय बनाया। दलितों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप से सशक्त करने में दलित आंदोलन की भूमिका से कदापि इन्कार नहीं किया जा सकता।

1.9 शब्दावली

सगुण– भक्ति के लिए ईश्वर के रंग, रूप, आकार, गुण आदि की संकल्पना

निर्गुण– ईश्वर के निराकार स्वरूप को मानना

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9. 1. सही 2. सही 3. सही4. सही

10. भाग 1.4 और 1.5 देखिये

1.11इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें–

सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया अ रिव्यू ऑफ लिटरेचर – घनश्याम शाह

दलित आइडेण्टिटी एण्ड पालिटिक्स – घनश्याम शाह

दलित मूवमेंट इन इण्डिया एण्ड इट्स लीडर्स 1857–1956 – रामचन्द्र क्षीरसागर

कल्चरल रिवोल्ट इन अ कोलोनियल सोशायटीः दी नान–ब्राह्मण मूवमेंट इन वेस्टर्न इण्डिया – गेल आमवेट

सोशल मूवमेंट्स अमांग दी बैकवर्ड क्लासेज एण्ड ब्लैक्सःहोमोलाजी इन दी सोर्सेज ऑफ आइडेन्टिटी, इन सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया – एम0एस0ए0 राव

आधुनिक भारत – सुमित सरकार

आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास – शैलेन्द्र पंथारी एवं अमरेन्द्र प्रताप सिंह

सोशल चेंज इन माडर्न इण्डिया – एम.एन श्रीनिवास

इकाई द्वितीय–अन्य पिछड़ेवर्गों एवं जातियों का आन्दोलन

इकाई रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अन्य पिछड़ा वर्ग से अभिप्राय?

2.4 अन्य पिछड़ा वर्ग आन्दोलन के कारण एवंप्रकृति

2.5 प्रमुख अन्य पिछड़ा वर्ग आन्दोलन

2.5.1 दक्षिणभारत में अन्य पिछड़ी जातियों का आन्दोलन

2.5.2 उत्तरभारत में अन्य पिछड़ेवर्गों एवं जातियों का आन्दोलन

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 इस खण्ड के लिए उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

सदियों से भारतीय समाज का संचालन जन्म आधारित जाति व्यवस्था से होता आया है। अंग्रेजी शासन काल में भी जाति के आधार परव्यक्ति की योग्यता और निर्योग्यता पहले से ही तय हो जाती थी। जाति के आधार पर व्यक्ति का कार्य निर्धारित हो जाता था जिसमे ंपरिवर्तन की संभावना अत्यंत मुश्किल थी। जन्म आधारित जाति व्यवस्था पदसोपानिक होती थी जिसमें कुछ जातियाँ उच्च और कुछ जातियाँ निम्न मानी जाती थी। निम्न जातियों को उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था। अंग्रेजी शासन काल में निम्न जातियेां को समाज में समानता, मूलभूत अधिकार, सामाजिक न्याय दिलाने के उद्देश्य से आधनिक भारत में कई आंदोलन हुए। इस इकाई में हम ऐसे ही अन्य पिछड़े वर्गों के आन्दोलनों की समग्र जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपजान सकेंगे कि

– अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों शब्द का क्या अर्थ है?

– अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों आंदोलनों की शुरूआत कब से हुई

– अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों आन्दोलनों के कारण और उनकी प्रकृति क्या रही

– प्रमुख अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों के प्रमुख आन्दोलन कौन से हुए?

2.3 अन्य पिछड़ी जातियों से अभिप्राय

अन्य पिछड़ा वर्ग एवं जातियों का अर्थ जानने से पहले हमें वर्ग एवं जाति को समझने की आवश्यकता है। अक्सर वर्ग और जातिको एक दूसरे के समानार्थी प्रयोग किया जाता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्तरीकरण का आधार जाति और वर्ग दोनों होते है। जाति एक सामाजिक संस्था है जो समाज में व्यक्ति के व्यवसाय, सामाजिक स्तर, अधिकार, निर्योग्यता आदि को निर्धारित करती है। चूँकि यह व्यवस्था जन्म आधारित होती है अतः इसमें व्यक्ति को इसमें परिवर्तन का अधिकार नहीं होता। जाति एक बन्द व्यवस्था है। जब कि वर्ग एक आर्थिक संकल्पना पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था है। वर्ग व्यक्ति द्वारा अर्जित पदों पर आधारित होता है और व्यक्ति योग्यता के आधार पर किसी भी उच्च पद को प्राप्त कर सकता है। यही बात इसे जाति से अलग करती है। इसलिए वर्ग एक खुली व्यवस्था है। पहले समाज का स्तरीकरण केवल जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था से ही होता था। इसी जाति व्यवस्था की कठोरता को दूर करने एवं समान अधिकार, अवसर, योग्यता के आधार पर पद प्राप्त करने के लिए ही जाति आंदोलनों का जन्म हुआ।

हिन्दू समाज के पारंपरिक विभाजन में मध्यवर्ती जातियों को अन्य पिछड़ी जातियों की संज्ञा दी जाती है। समाज में उच्च वर्ण या सवर्ण और अस्पृश्य समझे जानी वाली जातियों के अतिरिक्त जातियों की गिनती अन्य पिछड़ी

जातियों में की जाती है। यह जातियाँ भी शूद्र ही हैं जो अछूत नहीं मानी जाती। सवर्ण जातियों की तुलना में यह सामाजिक–आर्थिक रूप सें वंचित और पिछड़ी है परन्तु अस्पृश्यों की तरह सामाजिक अलगाव का शिकार नहीं हुई है। हीनता और वंचना के मामले में यह दलित जातियों के समान ही मानी जाती है। मूलभूत अधिकार, समानता, अवसर की समता आदि के मामलों में भी यह दलित जातियों की तरह ही सदियों से वंचित रहीं है। हालांकि अन्य पिछड़ी जातियेां में भी एक रूपता नहीं पायी जाती है। यह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में काफी विविधता पूर्ण है। एम0एस0ए0 राव अन्य पिछडी जातियेां को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं। पिछड़ी जातियों के उच्च वर्ग में भूस्वामी आते हैं जो देश के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग जाति के हैं, जैसे–जाट, अहीर, गुर्जर, मराठा, वेल्लाल, कम्मा, कप्पू, रेड्डी आदि। अन्य पिछड़ी जातियेां के मध्यम वर्ग में किसान, शिल्पकार, सेवक जातियों की गणना की जाती है जिनमें कहार, अहीर, कोली, वोद्दार आदि आते है। एम0एस0ए0 राव आगे लिखते हैं कि उच्च वर्ग से मध्यम वर्ग की अन्य पिछड़ी जातियाँ आर्थिक और राजनीतिक रूप से नियंत्रित होती है। राव के अनुसार सबसे निम्न वर्ग में अछूत जातियाँ आती है जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।

भारतीय संविधान में अन्य पिछड़ा वर्ग शब्द का ही प्रयोग किया गया है जिसके कल्याण के लिए राज्य द्वारा प्रयास करने की बात कही गयी है। आजादी के बाद पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए बने काका कालेलकर आयोग ने अन्य पिछड़े वर्गों के निर्धारण में जाति को भी आधार बनाया। काका कालेलकर आयोग 1953 के अनुसार हिन्दू समाज में निम्न स्थान पर रहने वाली जातियाँ जिनमें शिक्षा का अभाव हो और जो सरकारी सेवा और व्यापार, वाणिज्य, उद्योग आदि में अपर्याप्त या नगण्य प्रतिनिधित्व रखती हों। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अन्य पिछड़ा वर्ग और अन्य पिछड़ी जातियाँ शब्द को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग करने का उपर्युक्त कारण है।

उपर्यक्त विभाजन के आधार पर देखें तो परंपरागत रूप से भारतीय समाज में सवर्ण और अवर्ण या पिछड़ी जातियों के रूप में विभाजित है। अनुक्रम में पिछड़ी जातियों के अन्तर्गत ही अस्पृश्य जातियों को भी शामिल किया जाता है। कालान्तर में अस्पृश्यों को अनुसूचित जाति के रूप में अन्य पिछड़े वर्ग से अलग दर्जा दे दिया गया। अतः अन्य पिछड़ा वर्ग के आन्दोलनों का अध्ययन करते समय हम समाज के सर्वसुविधा सम्पन्न उच्च जातियों के एकाधिकार, शोषण, अन्याय के खिलाफ समानता, स्वतंत्रता, आत्मसम्मान आदि के लिए किए गये सभी जाति आंदोलनों का अध्ययन करेंगे।

2.4 अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों के आन्दोलन के कारण एवं प्रकृति

अन्य पिछड़ी जातियों की वंचित और असमान स्थिति तथा उनकी मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना के लिए आंदोलन की शुरूआत 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलन से होती है। आंग्लवादी विचारकों ने भारतीय समाज की आलोचना करने और अंगेजी शासन को न्यायोचित ठहराने के लिए भारतीय समाज को असभ्य समाज के रूप में चित्रित किया। आंग्लवादियों की आलोचना का मुख्य आधार भारतीय समाज में निम्न जातियों के साथ होने वाला असमान और अमानवीय व्यवहार बना। इसके साथ ही पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने भी आत्मविश्लेषण कर अपने समाज की जाति सम्बन्धी कमियों को समझा और उसमें सुधार करने का प्रयास करना शुरू किया। अंग्रेजी शासन की विभिन्न सामाजिक और आर्थिक नीतियों तथा कानूनों ने जाति विभाजन को कमजोर करने का कार्य किया। 1850 के जाति निर्योग्यता कानून और 1872 के विशेष विवाह कानून, रेलवे का विस्तार, संचार साधनों का विकास, नयी भूराजस्व नीतियों से परंपरागत सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन, सम्पत्ति पर अधिकार, मंदिर प्रवेश के कानून, 1833 के अधिनियम में अवसर की समता, अंग्रेजी शिक्षा से शासन में समान भागीदारी आदि ने जाति सुधार आंदोलनों को जन्म दिया। ये आंदोलन 19वीं सदी और 20वीं सदी में नितांत अलग रूपों में विकसित हुए। 19वीं सदी में प्रारम्भ हुए सुधार आन्दोलन उच्चजाति के महापुरूषों द्वारा संचालित हुए जिनकी प्रवृत्ति

सुधारवादी थी, जबकि 20वीं सदी में विकसित हुए जाति आन्दोलन पीड़ित समुदाय द्वारा नेतृत्व करने के कारण उनकी प्रकृति रूपान्तरणवादी और कई मायनों में क्रान्तिकारी रही। जैसे आत्मसम्मान आन्दोलन, पेरियार आन्दोलन आदि।

2.5 प्रमुख अन्य पिछड़ी जाति आन्दोलन

19वीं सदी में जाति सुधार आंदोलन मुख्यतः उच्च जाति के पाश्चात्यवादी विचारकों द्वारा प्रारम्भ किए गये। पश्चिमी उदारवाद और मानववाद से प्रेरित इन सुधारकों की दृष्टि में जन्म आधारित सभी विभेद गलत माने गये और सभी जातियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता और स्वतंत्रता देने का तर्क दिया गया। जबकि इसी समय पुनर्उत्थानवादी समाज सुधारकों यथा दयानान्द सरस्वती जैसे विचारकों ने तत्कालीन जातिव्यवस्था की बुराईयों को मूल हिन्दू धर्म का विकृत रूप माना। दयानंद सरस्वती ने वेदो की और लौटों का नारा देकर ऋग्वैदिक कालीन कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयास किया। आर्य समाजी भाई परमानंद ने जाति–पाति तोड़क मंडल की स्थापना कर जाति व्यवस्था का विरोध करने का प्रयास किया। ऊपर से आरोपित इन जाति सुधार आंदोलनों का परिणाम आशाजनक नहीं निकला। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ज्योतिबा फुले द्वारा ब्राह्मण विरोधी आंदोलन की शुरूआत महत्वपूर्ण पिछड़ी जाति के आन्दोलन के रूप में की गयी। घनश्याम शाह ज्योतिबा फुले को महाराष्ट्र में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलनों का सबसे प्रमुख विचारक मानते हैं। फुले ने ब्राह्मणों द्वारा बताये गये हिन्दू धर्म, उसकी परंपराओं, जाति व्यवस्था आदि को मानने से इंकार कर दिया। फुले का मानना था कि ब्राह्मणों ने यहाँ के मूल निवासियों को शूद्र का दर्जा देकर जाति व्यवस्था के माध्यम से उनके दीर्घकालिक शोषण को अंजाम दिया। जाति व्यवस्था को दैवीय दर्जा देकर जाति विभाजन को स्थायी करने का मार्ग निकाला गया। फुले के विचार में सभी पुरूषों और स्त्रियों को समानता और स्वतंत्रता के साथ जीवन जीने का अधिकार मिलना चाहिए। अपने विचारों को उन्होनें गुलामगिरी एवं सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तकों तथा

सत्यशोधक समाज संगठन के माध्यम से प्रचारित किया। फुले ब्राह्मण धर्म को निम्न जातियों के शोषण और गरीबी का मूल कारण मानते थे। फुले का मुख्य ध्यान निम्न जातियों को ब्राह्मण धर्म के सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण के मुद्दों पर ही केन्द्रित रहा। फुले ने गैर ब्राह्मण लोगों के जीवन में होने वाले ब्राह्मण धार्मिक संस्कारों का बहिष्कार किया क्यों कि फुले का मानना था कि धर्म का डर दिखा कर और उसकी व्याख्या कर ब्राह्मण गैर ब्राह्मण जातियों के जीवन पर हावी हो जाते हैं। फुले अछूतों और पिछड़े किसानों को शिक्षा और संगठन के माध्यम से एक जुट करने में सफल रहें। फुले ने निम्न और पिछड़ी जातियेां के उद्धार के लिए शिक्षा और संगठन पर विशेष बल दिया क्योंकि फुले के अनुसार इन्हीं के माध्यम से ही जाति सुधार आन्दोलन के लक्ष्य पूरे किये जा सकते थे। शिक्षा को फुले मुक्ति का स्त्रोत मानते थे। शिक्षा से ही निम्न जातियाँ सदियों की शारीरिक और मानसिक गुलामी का विरोध करने की शक्ति एकत्र कर सकते थे। ज्योतिबा फुले ने निम्न जातियों के साथ स्त्रियों के लिए कई पाठशालाएँ स्थापित की। ज्योतिबा के इस सुधार कार्य में रानाडे की सहानुभुति और कोल्हापुर के महाराजा का सहयोग भी प्राप्त था।

2.5.1 दक्षिण भारत में अन्य पिछड़ी जातियों का आन्दोलन

पिछड़ी जातियों के आन्दोलन का प्रमुख क्षेत्र दक्षिण भारत रहा क्योंकि दक्षिण भारत में समाज का स्पष्ट विभाजन ब्राह्मण और गैरब्राह्मण में था। दक्षिण में ब्राह्मणों का आधिपत्य और जाति सम्बंधी कठोरता का स्तर अत्यंत उच्च था। दक्षिण भारत में नीची जाति के लोगों का स्पर्श ही नहीं बल्कि उनको देखना और सुन लेन भी अपवित्र करने वाला माना जाता था। इस व्यवस्था में ब्राह्मण की संख्या अत्यंत कम होने के बावजूद भी अधिकतम प्रशासनिक पदों, जमीनों, आदि पर ब्राह्मणों का ही अधिकार था। अंग्रेजी शासन में पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार, कानूनी समानता मिलने, आर्थिक स्थिति मजबूत होने के पश्चात भी निम्न वर्ग की सामाजिक स्थिति पहले की तरह पतित बनी रही। 20वीं सदी के शुरूआती दशक में निम्न जाति और पिछड़े वर्गों ने अपना

संगठन दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ बनाया जो कालान्तर मे ंजस्टिस पार्टी के नाम से जाना जाने लगा। जस्टिस पार्टी की स्थापना 1915–16 में मद्रास की मंझली जातियों वल्लाल, मुदलियार, चेट्टियार, तेलुगुरेड्डी, कम्मा आदि के बीच से सी0एन0मुदलियार, टी0एम0नायर और पी0 त्यागराज ने की थी। अपने सदस्यों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व और प्रशासन में भागीदारी की उम्मदी में जस्टिस पार्टी ने अंग्रेजों के प्रति स्वामी भक्ति की घोषणा की। 1937 ई0 के आस–पास इस पार्टी के मुखिया ई0वी0 रामास्वामी नायकर बने जिन्हें पेरियार के नाम से भी जाना जाता है। पेरिया पहले कांग्रेस पार्टी के सदस्य थे और महात्मा गांधी के आदर्शों से अत्यंत प्रभावित थे। कांग्रेस द्वारा संचालित एक गुरूकुल में ब्राह्मणों और गैर ब्राह्मणों के अलग भोजन की व्यवस्था से दुखी होकर इन्होनें कांग्रेस पार्टी का परित्याग कर दिया। पेरियार ने धर्म और उसमें ब्राह्मणों की सर्वोच्चता पर खुल कर प्रहार किया। उन्होंने अपने लेख में लिखा कि आत्मसम्मान आन्दोलन का सर्वाधिक सही मार्ग है। पेरियार ने सभीमानवों के बीच समानता और उसकी गरिमा को सर्वाधिक महत्व दिया। पेरियार के अनुसार धर्म ही इस समानता और गरिमा की स्थापना में सबसे बड़ा अवरोधक है क्योंकि वह बुद्धिवाद का विरोधी है। पेरियार ने गैरब्राह्मणों से जीवन में जन्म से मरण तक होने वाले किसी भी कार्यक्रम में ब्राह्मणों की सेवा लेने से मना किया। रामास्वामी नायकर गैर ब्राह्मणों के लिए एक धर्मयोद्धा की तरह थे। हिन्दू धर्म के विभिन्न प्रतीकों देवी–देवताओं आदि का पेरियार ने खुल कर भर्त्सना की। पुराणों को पेरियार परियों की कहानियाँ कहते थे। धर्म को पेरियार ब्राह्मणों के नियंत्रण का साधन मानते थे। उनके अनुसार हिन्दू धर्म ऐसा तत्व हैं जिनमे ंसुधार नहीं बल्कि केवल उनका अंत ही किय ाजा सकता है। पेरियार ने अपने व्यवहार में कई बार अत्यंत उग्र कार्य भी किये। पेरियार ने ब्राह्मण धर्म का विरोध करने के लिए यज्ञोपवीत को तोड़ दिया, हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियों को चप्पल से पीट कर तोड़ दिया। कालान्तर में आत्मसम्मान आन्दोलन

औपनिवेशिक शासन और देशी राज्यों से पिछड़े वर्गों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व और आरक्षण की मांग की ओर उन्मुख हो गया।

कर्नाटक में ऐसे ही पिछड़ी जातियेां ने प्रजामित्र मंडल की स्थापना की जिसका उद्देश्य ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देकर अपने लिए स्थान सुनिश्चित करना था। इसी प्रकार का आन्दोलन और प्रतिनिधित्व की मांग के लिए वोक्कालिगा और लिंगायत समूहो द्वारा अपने संघ की स्थापना मैसूर में की गयी। प्रजामित्र मंडल के समाप्त हो जाने के पश्चात वोक्कालिंगा और लिंगायत समूह कर्नाटक मे मजबूत स्थिति प्राप्त करने में सफल रहे।

केरल के एझवा जाति के लोगों ने ऐसे ही मझोली जातियों के आन्दोलन का नेतृत्व किया। ईसाई मिशनरियों की शिक्षा और सहायता पाकर एझवा जाति के लोग जाग्रत हो रहे थे। नारियल उत्पादों के बाजार का विस्तार होने से यह वर्ग आर्थिक रूप से भी मजबूत होने लगा था। केरल में निम्न जातियों के उत्थान के लिए 1902–03 में एझवा जाति के प्रथम स्नातक डॉ0 पल्पू, श्री नारायण गुरू एवं मलयाली कवि एन. कुमारन ने श्रीनारायण धर्म परिपालन योगम् की स्थापना की। इस संगठन का मूलमंत्र एक जाति, एक धर्म, एक ईश्वर था जिसे कालान्तर में केलप्पन ने मानव के लिए कोई जाति नहीं, कोई धर्म नहीं, कोई ईश्वर नहीं में परिवर्तित कर दिया जो आमूल परिवर्तन वाद को दर्शाता है। इस संगठन ने एझवा जाति के उत्थान के लिए स्कूल, कॉलेज, अलग मन्दिर बनवाए। एझवा जाति के लोगों ने धार्मिक आध्यात्मिक उत्थान के साथ खान–पान की शुद्धता, शारीरिक और पर्यावरणीय स्वच्छता के माध्यम से स्वयं को पिछड़ी जाति में परिवर्तित करने में सफलता प्राप्त कर ली। नारायण गुरू ने अपने आन्दोलन में महात्मा गांधी की आलोचना इस वजह से की कि वो केवल मौखिक सहानुभूति की बात करते हैं और उस चतुवर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं जो जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता का प्रमुख कारक है।

आन्ध्र प्रदेश में भी निम्न जाति के लागों ने अपने अधिकारों के लिए आत्मसम्मान आन्दोलन चलाया। आन्ध्र प्रदेश में कम्मा, रेड्डीज, वेलमा आदि

निम्न पिछड़ी जातियों ने जब आर्थिक समृद्धि हासिल करने के पश्चात भी समाज में निम्न सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति और शासन–प्रशासन में सहभागिता के लिए इन क्षेत्रों में ब्राह्मणीय प्रभुत्व के खिलाफ आंदोलन किया। ब्राह्मणों ने कम्माजाति के लोगोंको शूद्रहोने के नातेसंस्कृतपढ़ने से मनाकरतेथेऔर नाम के आगेचौधरीलगाने का भीविरोध करतेथे।निम्नजाति के त्रिपुरा नेबी रामास्वामी के नेतृत्व में लोग संगठित हुए। 1916 के गुण्टूरमें शूद्र शब्द का अर्थ निकालने के लिए ऐसे ही गैर ब्राह्मण शिक्षित लेागों ने अधिवेशन बुलाया। इस अधिवेशन में धार्मिक नायकोंराम, कृष्ण आदि परसंदेह किया गया और शूद्रों को मूल निवासी होने और आर्यो ंको बाहरी मानने के विचार ने शूद्रों को सर्वश्रेष्ठ माना। इस विमर्श को आगे बढ़ाते हुए पिछड़े जातियों ने आर्थिक क्षेत्रों, नौकरियों आदि गैरब्राह्मणों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने की मांगकी। त्रिपुरा नेनी ने अपनीरचना शंबुक वध के माध्यम से आर्यों के बल प्रयोग की राजनीति को उजागर किया। इस रचना मे बताया गया कि राम ने वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के नाम पर शंबुक का वध किया क्योंकि शंबुक उस ज्ञान का प्रचार कर रहा था जिसे ब्राह्मणों ने शूद्रों के लिए प्रतिबंधितकर रखा था।

2.5.2 उत्तरभारतमेंअन्य पिछड़ेवर्गों एवंजातियों का आन्दोलन

आजादी के पूर्व दक्षिण भारत की तुलना मे ंउत्तर भारत मे ंअत्यंत क्रान्तिकारी जाति आन्दोलनों का उद्भव नहीं देखने को मिलता है।उत्तर भारत की मध्यवर्ती जातियाँ दक्षिण की तरह दबंग रूप से नहीं उभर पायीं और न हीं राजनीतिक और प्रशासनिक प्रतिनिधित्व की मांग प्रस्तुत कर पायी।उत्तर भारत में ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता को विविध परंपराओं के माध्यम से बनाये रखा। बल्कि उत्तर भारत की मध्यवर्ती जातियो ंमें हमें संस्कृति करण की प्रबल प्रवृत्ति देखने को मिलती है। समृद्ध और मजबूत जातियों ने समाज में अपनी स्थिति को उच्च करने के लिए सवर्णों का अनुपालन करना शुरू करदिया और अन्य पिछड़े वर्गों में इस तरह की एक प्रतियोगिता प्रारम्भ हो

गयी। इस होड़ ने उस एकता की स्थापना मे सबसे बड़ा अवरोध उत्पन्न किया जो किसी भी आन्दोलन की रीढ़ होतीहै।उत्तर भारत में मुख्यतः उत्तरप्रदेश और बिहार में अन्य पिछड़े वर्गोंने आजादी के बाद राजनीति कमहत्ता हासिल करने के दृष्टिकोण से स्वयं को संगठित किया और सफल भी हुए।

बोध प्रश्नः

1. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही एवं गलत के चिन्ह लगाएँ–

1. वर्ग और जाति एक दूसरे के समानार्थी है।

2. प्रारम्भिक समय में अन्य पिछड़े वर्गों में अस्पृश्य जातियाँ भी शामिल थी

3. आत्मसम्मान आन्दोलन पंजाब में हुआ था।

4. गैरब्राह्मणजाति आन्दोलनों की शुरूआत दक्षिण भारत से हुई।

2. दक्षिण भारत में अन्य पिछड़ेवर्गों एवं जातियों के आन्दोलनों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों के आन्दोलन का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों के धार्मिक रूढ़िवादी संरचना और व्याख्या ने पिछड़ी जातियों को सामाजिक, आर्थिक, राजीनतिक सभी क्षेत्रो में पीछेकर के रखा था। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में निम्नजाति के शोषण और दमन ने जाति आंदोलनों की पृष्ठभूमि निर्मित की जिसमें अंग्रेजी शासन ने उत्प्रेरक का कार्य किया। कालांतर में अन्य पिछड़े वर्गों का आन्दोलन नौकरियों और राजनीति में प्रतिनिधित्व की मांग पर केन्द्रित हो गया।अन्य पिछड़े वर्गों एवं जातियों के आन्दोलन की प्रकृति सुधारात्मकथी जिसमें शिक्षा, संस्कृति करण के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक स्थितिको मजबूत करने का प्रयासकिया। इन जातिआंदोलनों के पीछे समानता, स्वतंत्रता,मानवीय गरिमा की स्थापना जैसे तत्व प्रमुख थे। इन्हीं आंदोलनों में कई आमूल परिवर्तनवादी प्रकृति के

भीहुए जिन्होनें पूरी सामाजिक संरचाना को ही चुनौती दी और पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर वैकल्पिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया।

2.7 शब्दावली

संस्कृति करण–निम्न जाति के द्वारा उच्चजाति की जीवन शैली, प्रथा, संस्कृति का अनुपालन कर समाज में उच्चतर स्थिति का दावा

आमूल परिवर्तनवादी–सुधार की जगह मूल संरचना को ही पूरा बदलने वाला

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1. गलत 2. सही 3. गलत 4. सही
2. भाग2.5.1देखिये

2.9 इस खंड के लिए उपयोगीपुस्तकें–

सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया अ रिव्यू ऑफ लिटरेचर– घनश्याम शाह

आधुनिक भारत–सुमित सरकार

कल्चरल रिवोल्टइन अ कोलोनियल सोशायटीः दीनान–ब्राह्मण मूवमेंटइन वेस्टर्न इण्डिया–गेल आमवेट

सोशल मूवमेंट्स अमांगदी बैकवर्ड क्लासेज एण्ड ब्लैक्सःहोमो लाजी इनदी सोर्सेज ऑफ आइडेन्टिटी, इनसोशल मूवमेंट्स इनइण्डिया– एम0एस0ए0 राव

आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास– शैलेन्द्र पंथारी एवं अमरेन्द्रप्रताप सिंह

इकाई तृतीय–आदिवासी आन्दोलन

इकाई रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 आदिवासी कौन?

3.4 आदिवासी आन्दोलन के कारण

3.5 आदिवासी आन्दोलन की प्रकृति

3.6 प्रमुख आदिवासी आन्दोलन

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 इस खण्ड के लिए उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी राज के विस्तार के दौरान अंग्रेजों का प्रत्यक्ष सम्पर्क समाज की मुख्य धारा से भौतिक और सांस्कृतिक रूप से अलग नितान्त एकांत वातावरण में रहने वाले देशी समुदायों से हुआ। ये समुदाय दुर्गम क्षेत्रों पहाड़ो, घने जंगलों आदि में निवास करते थे। ब्रिटिश राज ने अपने साम्राज्यवादी शासन में जब इन क्षेत्रों का शोषण करने के लिए अपनी औपनिवेशिक नीतियों को लागू किया तो इन आदिवासी लोगों का प्रकृति के साथ साहचर्य समाप्त होने लगा। आदिवासी समुदाय अपने जन, जंगल और जमीन के प्रति अधिकारों को बचाने के लिए अंग्रेजों के खिलाफ प्रतिरोध करना शुरू किया जो अधिकांशतः हिंसक रूप में प्रस्फुटित हुआ। आदिवासी समुदायों के द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति को बनाये रखने के लिए कई आन्दोलन और विद्रोह किये गये। इस इकाई में समग्र रूप से ऐसे ही आदिवासी आन्दोलनों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि

–आधुनिक भारत में आदिवासी शब्द का क्या अर्थ है?

– आधुनिक भारत में आदिवासी आंदोलनों की शुरूआत कब से हुई

– आदिवासी आन्दोलनों के कारण और उनकी प्रकृति क्या रही

– प्रमुख आदिवासी आन्दोलन कौन से हुए?

3.3 आदिवासी कौन

भारत में आदिवासियों को जनजाति, वनवासी, गिरीजन, वन्य जाति, आदिम जाति आदि संज्ञाओं से विभूषित किया गया है। घूरिये ने आदिवासियों को पिछड़े हिन्दू भी कहा है।

भारतीय संविधान की धारा 366(25) के अनुसार – ऐसी जनजातियाँ, मूलवंश, जनसमुदाय या ऐसी जनजातियों, मूलवंश, जनसमुदाय के भाग जिन्हें संविधान की धारा 342 के अधीन अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाता है। संविधान की धारा 342 के अनुसार राष्ट्रपति किसी क्षेत्र के जनजातियों, जनसमुदायों या उसके भाग को अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगा।जनजातियों को परिभाषा के माध्यम से समझने में दिक्कत होती है। अतः उनके जीवन की विशेषताओं के बारे में जानकर हम उनके बारे में समझ सकते हैं। जनजातियाँ ऐसे लोगों का समूह है जो मुख्य धारा के भौगोलिक और सामाजिक क्षेत्र से नितान्त अलग एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास या विचरण करता है, जिसकी एक भाषा, संस्कृति है, परंपरागत नियमों से संचालित है, आज भी आधुनिकता के साधनों, विचारों से वंचित है, प्रकृति के साहचर्य में जमीन और जंगल पर ही पूर्णतः निर्भर है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व जनजातियों का मुख्य समाज के कोई सम्पर्क नहीं था। ये लोग जंगलों मे निवास करते हुए जंगल के प्राकृतिक संसाधनों से ही आने भोजन और अन्य दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करते थे। मुख्य रूप से कृषि और पुशपालन उनका व्यवसाय था। इनका सम्पूर्ण जीवन जंगल पर ही निर्भर था। इनके रीति–रिवाज, संस्कृति, विवाह, खान–पान,

धर्म, मूल्य आदि परंपरागत और रूढ़िगत होते थे। जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक आदि समस्त सम्बन्ध अपने समुदाय से ही बंधा होता था। ये लाग बाहरी समुदाय से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते थे। अंग्रजों के आगमन ने आदिवासी समाज के जीवन में हस्तक्षेप कर नकारात्मक रूप से उनको प्रभावित किया जिसकी परिणति आदिवासी आन्दोलनों के रूप में हुई।

3.4 आदिवासी आन्दोलन के कारण

अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करने के लिए आदिवासी संगठित हुए और अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन करना शुरू किया। आदिवासी आन्दोलनों का उद्देश्य अंग्रेजों के द्वारा परिवर्तित स्थिति को समाप्त कर पूर्व की स्थिति को स्थापित करना था।अंग्रेजों के आगमन के पूर्व आदिवासी बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त जमीन और जंगल पर स्वतंत्र अधिकार सहित जीवन व्यतीत कर रहे थे। ब्रिटिश शासन ने आर्थिक शोषण के लिए आदिवासी क्षेत्रों में विस्तार कर अपनी शोषणकारी नीतियों को आदिवासियों के ऊपर भी थोप दिया।

सर्वप्रथम उत्तर–पूर्व भारत के आदिवासी अंग्रेजों के सम्पर्क में आये। बंगाल में अधिकार के पश्चात असम क्षेत्र में होने वाले अंग्रेजी विस्तार ने आदिवासियों के साथ होने वाले सम्पर्क को अनिवार्य बना दिया। अंग्रेजों की भूमि राजस्व पद्धति जमींदारी व्यवस्था ने एकाएक शताब्दियों से खेती कर रहे अदिवासियों को उनके ही जमीन पर खेतिहर मजदूर बना दिया। अब उनके जमीनों के नये मालिक जमींदार हो गये। ये नये मालिक उनके बीच के नहीं बल्कि बाहरी थे। कई क्षेत्रों में आदिवासी कबीले के प्रधान को भी जमींदार बनाकर उनके माध्यम से बड़े स्तर पर राजस्व वसूला जाने लगा। जल्दी ही आदिवासी किसान कर्ज के जाल में फँसते गये। अंग्रेजी सरकार के उच्च लगान की मांग ने नये जमींदारों से जमीनों का हस्तांतरण साहूकारों और व्यापारियों को ओर करना सुनिश्चित कर दिया। आदिवासी लोगों के बीच और ज्यादा बाहरी लोगों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हो गया। उनकी जमीन के साथ उनके जन यानि स्त्रियों और अन्य लोगों के साथ दुर्व्यवहार भी होने लगा। बेगारी की प्रथा ने आदिवासी लोगों को उनके अपने ही क्षेत्र में शोषित और

अपमानित होने के लिए बाध्य किया। आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों की घुसपैठ ने आदिवासियों की पूरी संरचना को नष्ट कर दिया। वर्षों से जिस जंगल और उसके उत्पादों का आदिवासी निर्बाध रूप से प्रयोग करते आ रहें थे, उन सब पर बाहर से आये अंग्रेजों, जमींदारों, अधिकारियों, साहूकारों, व्यापारियों आदि ने नियंत्रण करना शुरू कर दिया। पहले आदिवासी झूम खेती के माध्यम से स्थान बदलकर खेती करते थे, परन्तु अब ऐसा संभव नहीं रहा। अंगेजी सरकार के वन अधिनियम ने वनों के उत्पाद पर मालिकाना हक घोषित किया और आदिवासियों को जंगलों के उपयोग पर पाबंदी लगा दी। वनों को सरकारी सम्पत्ति घोषित कर दिया गया । अंग्रेजी सरकार ने 1865 के वन कानून जो 1878 में संशोधित हुआ के माध्यम से आदिवासियों द्वारा अपने दैनिक उपयोग के लिए वन सामग्री का उपयोग करना जैसे शहद, फल, लकड़ी, बांस का उपयोग, शिकार करना आदि को अत्यंत मुश्किल कर दिया। वन कानूनों के प्रभावों के बारे में आदिवासी कल्याण कार्यकर्ता वेरियर एल्विन के समक्ष एक ब्रिटिश वन अधिकारी ने स्वीकार किया था कि हमारे कानून इस तरह के हैं कि हर ग्रामीण अपने जीवन में रोज एक जंगल कानून तोड़ता है। वन कानूनों ने किस प्रकार आदिवासियों के परंपरागत अधिकारों को समाप्त किया उसके बारे में सुमित सरकार लिखते हैं कि उपनिवेशी राजसत्ता ने उन बड़े–बड़े क्षेत्रों पर जिन्हें वह जंगल कहती थी अपने नियम कानून लागू किये। 1878 के कानून से आरक्षित और संरक्षित वनों की दो श्रेणिया अनायी गयी जिसमें आरक्षित श्रेणी का प्रबंध और उसके संसाधन पूर्णतः सरकार के हाथ में थे और संरक्षित क्षेत्रों में ईधन, चराई आदि संसाधनों का उपयोग ग्रामणों को करने की अनुमति दी गया थी। पुनः सरकार ने संरक्षित को आरक्षित में परिवर्तित करने का विशेष अधिकार सरकार के पास ही था। इस प्रकार एक झटके में लम्बे समय से जंगल पर चले आ रहे पुराने तौर तरीके और अधिकार समाप्त कर दिये गये। आदिवासी इलाकों में अंग्रेजों द्वारा आबकारी कर लगाने से समस्या और गंभीर हो गयी। चावल से घर में शराब बनाने को भी कर के दायरे में ले आया गया। यहाँ

तक कि नमक और अफीम पर भी कर लगा दिया गया। इन सब कारकों से आदिवासियों का जीवन दूभर हो गया और अपने ही क्षेत्र में निरन्तर अपमानित और शोषित होते रहें। आदिवासी क्षेत्रों में अंग्रेजों द्वारा सैनिक छावनियाँ, सड़के, पुलिस थाने आदि प्रशासकीय संस्थान बनाने से आदिवासियों के जीवन में बाहरी लोगों का हस्तक्षेप निरन्तर बढ़ता गया। आदिवासी क्षेत्रों में नियुक्त अधिकारी और कर्मचारी जमींदारों और साहूकारों के साथ मिलकर आदिवासियों का निरन्तर शोषण करते रहें। वस्तु आधारित शोषण के साथ ही आदिवासियों की स्त्रियों, बच्चों आदि का शोषण भी होता था। इन क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार ने आदिवासियों के मन में घुसपैठियों के प्रति घृणा को और तीव्र कर दिया। अंग्रेजी शासनकाल में होने वाले आदिवासी आन्दोलनों के यही उपर्यक्त कारण थे जो अलग–अलग आन्दोलनों में विभिन्न रूपों में उपस्थित रहें।

3.5 आदिवासी आन्दोलन की प्रकृति

आदिवासी जीवन में बाहरी लोगों के शोषणकारी हस्तक्षेप से उपजी प्रतिकूल परिस्थिति में आदिवासियों ने अपनी पुरानी स्वतंत्रता और आजादी प्राप्त करने के लिए हिंसक और अहिंसक दोनों ही रूपों में आन्दोलन किया। जब शोषण सहनशीलता की सीमा के पार कर गया तो आदिवासियों ने अपने सरदारों और मुखियाओं के संगठन और नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह कर दिया। अधिकांश आदिवासी आन्दोलन और विद्रोह हिंसक थे। आदिवासियों के असंतोष का स्तर इतना उच्च था कि उन्होंने शोषण और दमन को तत्काल समाप्त करने के लिए हथियार का सहारा लिया। आदिवासियों ने अत्यंत वृहत् स्तर पर अंग्रेजों से संघर्ष किया। इन संघर्षों में हजारों की संख्या में आदिवासी शामिल होते थे। कई क्षेत्रों में पूरा का पूरा क्षेत्र ही समस्त जनता सहित हथियारों के साथ संघर्ष करता था। इन हिंसका आन्दोलनों का उद्देश्य बाहरी शोषकों के आधिपत्य को ही समाप्त करना होता था।

हिंसक के साथ ही कई आदिवासी आन्दोलन अहिंसक भी हुए। 20वीं सदी में ऐसे अहिंसक आन्दोलन देखने को मिलते हैं। इन अहिंसक आन्दोलनों में

आदिवासी अपना विरोध शांतिपूर्वक प्रकट करते थे। जैसे ताना भगत आंदोलन।

3.6 प्रमुख आदिवासी आंदोलन और विद्रोह

आदिवासी आंदोलन की शुरूआत अंग्रेजी शासन की स्थापना के तुरंत हो गयी थी। 1768 ई0 में मिदनापुर जिले में रहने वाली जनजातियों ने जिसे बाहरी लोग चुआर कहते थे, ने अकाल और भूमिकर सम्बन्धी समस्याओं के कारण विद्रोह कर दिया। पश्चिमी तट के निकट खानदेश में रहने वाले भीलों ने खानदेश के अधिग्रहण और किसानी में संकट के कारण 1818 से अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। 1825 में सेवरम के नेतृत्व में भीलों ने पुनः संघर्ष किया। छिटपुट रूप से यह विद्रोह 1848 तक चलता रहा। छोटा नागपुर तथा सिंहभूम जिले के हो और मुण्डा लोगों ने भी अपने क्षेत्रों में 1820 से 1837 ई0 तक अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का झण्डा बुलन्द रखा। बर्मा युद्ध के पश्चात असम के अधिग्रहण ने अहोम लोगों को रूष्ट कर दिया। 1828 ई0 में अहोम लोगों ने गोधन कुवर के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। कम्पनी के सैनिक दृष्टि से मजबूत होने के कारण यह विद्रोह जल्दी ही दबा दिया गया। जयन्तिया और गारों पहाड़ी पर अंग्रेजी शासन के विस्तार ने क्षेत्र के आदिवासियों के बीच भय का माहौल बना दिया। अंग्रेजों के ब्रह्मपुत्र घाटी और सिल्हट के बीच सड़क निर्माण ने इस क्षेत्र में बेगार और उत्पीड़न को बढ़ावा दिया। बाहरी लोगों के लगाातर बढ़ते अतिक्रमण और उत्पीड़न से तंग आकर नक्कालों के राजा तीरत सिंह के नेतृत्व में गारो, खम्पटी, सिंहपो आदि ने अंग्रेजों को बाहर निकालने का प्रयास किया। 1831 ई0 तक अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबा लिया। छोटा नागपुर के क्षेत्र में 1820 से 1836 के बीच कोल आदिवासियों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह का कारण कोल आदिवासियों की जमीन को मुस्लिम एवं सिख किसानों को देना था। इस विद्रोह में लगभग 1000 विदेशियों को जला दिया गया। जल्दी ही यह विद्रोह रांची, मानभूम, पालमउ, हजारीबाग, सिंहभूम के क्षेत्रों में विस्तृत हो गया। अंग्रेजों ने एक कठोर सैन्य अभियान कर इस विद्रोह का दमन किया।

आदिवासियों का सर्वाधिक सशक्त विद्रोह संथालों ने किया। संथालों का निवास स्थान भागलपुर और राजमहल पहाड़ियों के बीच था जिसे दामन–ए–कोह के नाम से भी जानते थे। संथाल बाहरी लोगों को दिकू कहकर संबोधित करते थे। इस क्षेत्र में विद्रोह का कारण अंग्रेजों की भूराजस्व नीति थी। भू राजस्व अधिकारियों के दुर्व्यवहार, जमींदारों और साहूकारों के शोषण ने संथालों को विरोध करने के लिए मजबूर कर दिया। अंग्रेजी राज के आगमन से संथालों की स्वायत्ता समाप्त हो गयी। पुलिस और साहूकारों के शोषण ने संथालों के मन में दिकुओं के प्रति घृणा भर दी। साहूकार संथालों से गुलामी के दस्तावेज लिखवा लेते। एक बार चंगुल में फसने के पश्चात उससे बाहर निकलना संथालों के लिए असंभव था। इसके साथ ही संथाली स्त्रियों के साथ बलात्कार की घटनाए भी होती थी। इन सारे अन्याय से संथालियों को न्यायालय से भी राहत नहीं मिलती थी। स्थिति बर्दाश्त के बाहर हो जाने पर 30 जून 1855 को भगिनीडीह में 400 गांवों के संथालियों की विशाल सभा हुई। इस सभा में दिकुओं को बाहर निकालने और विदेशी राज समाप्त करने के लिए शस्त्र उठाने का निर्णय लिया गया। संथाल आदिवासियों ने अपने साथ ठाकुरजी को मानकरसमस्त दिकुओं के खिलाफ संथाल 1855–1856 में सिद्धों और कान्हों के नेतृत्व में अपने परंपरागत हथियारों के साथ सशस्त्र विद्रोह कर दिया। संथालों ने कंपनी शासन के अन्त को अपना लक्ष्य बनाया और उनके सहयोगी जमींदारों और साहूकारों को भी निशाना बनाया। संथालों ने पुलिस स्टेशन, रेलवे, स्टेशन, डाक ले जाने वाल गाड़ी आदि अंग्रेजी शासन के प्रतीकों को जला दिया। उन सभी पर हमला किया गया जो गैर अदिवासी थे। सरकार मेजर बर्र के नेतृत्व में मार्शल लॉ लागू कर निर्मम सैनिक अभियान से शांति की स्थापना की। अंग्रेजो की सैनिक कार्यवाही में लगभग 15000 संथाल मारे गये।अन्ततः सिद्धू और कान्हू पकड़े गये और मारे गये और ऐतिहासिक

विद्रोह को दबा दिया गया। कालांतर में अंग्रेजी सरकार ने संथाल परगना बनाकर संथालों को एक अलग पहचान दी।

आदिवासी आंदोलन के इतिहास में मुण्डा उल्गुलान का स्थान सर्वोपरि है।मुण्डा छोटा नागपुर के क्षेत्र में बसे हुए थे। मुंडा जनजाति सामूहिक खेती की परंपरा खूँटकट्टी का पालन करती थी। कम्पनी सरकार के आगमन से उत्तर भारत के व्यापारियों और साहूकारों ने सरकारी तंत्र के साथ मिलकर सामूहिक खेती को नुकसान पहुँचाया और मुण्डाओं की जमीन उनके हाथ से निकलने लगी। जमींदारों के द्वारा कठोर कर वसूली ने मुण्डा लोगों को साहूकारों से कर्ज लेने को विवश किया। मुण्डा के क्षेत्र में बाहरी लोग उनकी जमीनों के मालिक बनते जा रहे थे जो उनके लिए अत्यंत पीड़ादायक था। इसके साथ ही उनके क्षेत्र में लगातार होने वाला ईसाई धर्म का प्रसार भी उनके लिए असह्य हो रहा था। 1890 के शुरूआती वर्षों में मुण्डा लोगों ने बाहरी भूस्वामियों और जबरदस्ती बेगारी के खिलाफ कलकत्ता न्यायालय के माध्यम से लड़ने का प्रयास किया पर सफल नहीं हुए। मुण्डा जनजाति के लोगों को यह बात समझ में आ चुकी थी कि बाहरी लोग उनकी समस्याओं का समाधान नही ंकर सकते, अब उनके अपने बीच से ही कोई आदमी उनका मसीहा बन सकता है। यह स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेजी राज के खात्मे से ही उनकी समस्याओं का समाधान हो सकता है। मुण्डाओं के बीच से ही बिरसा मुण्डा मसीहा बनकर सामने आया। बिरसा एक बँटाईदार का बेटा था। कुछ समय तकवह मिशनरियों के सम्पर्क में रहा था और वैष्णवों के सम्पर्क में भी कुछ दिन बिताये थे।बिरसा मुंडा 1893–94 में वन विभाग द्वारा जमीन अधिग्रहण के विरोध आंदोलन में भाग ले चुके थे। 1895 में बिरसा मुण्डा ने स्वयं को पैगम्बर घोषित कर दिया। मुण्डा आदिवासी बिरसा को उद्धारक मानकर उसकी बात सुनने लगे और अपना धार्मिक–राजनीतिक नेता स्वीकार कर लिया। बिरसा ने छोटा नागपुर क्षेत्र में आदिवासियों को सशस्त्र विद्रोह करने के लिए तैयार किया और 1899 में क्रिसमस की पूर्व संध्या पर विद्रोह की शुरूआत कर दी।बिरसा मुण्डा ने लोगों को विश्वास दिलाया कि

ईश्वर के आशीर्वाद से दुश्मनों की गोलियाँ पानी बन जायेंगी। मुंडा लोग बड़े उत्साह से निम्नलिखित गीत के साथ विद्रोह को आगे बढ़ाते –

कटोंग बाबा कटोंग, साहेब कटोंग कटोंग, रारी कटोंग कटोंग.....

(काटो बाबा काटो, यरोपीयों को काटो, दूसरी जातियों को काटो)

मुण्डा लोगों ने जबरदस्त प्रतिरोध करते हुए रांची और सिंहभूम के पुलिस थानों और चर्चों को जलाने के प्रयास किये। जल्दी ही सरकारी दमन तेज होने से मुंडा लागेां की हार होने लगी। पुराने हथियारेां से वे आखिर कब तक अंग्रेजों के समक्ष टिके रह सकते थे। बिरसा पकड़े गये और जेल में ही उनकी मृत्यु हो गयी। कई अन्य मुंडा लोगों को फाँसी की सजा दी गयी और कई को आजीवन कारावास की सजा दी गयी।

20वीं सदी के आदिवासी आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन में और राष्ट्रीय नेताओं के साथ समाहित हो गये। 18वीं सदी में शुरू हुआ मिदनापुर के जनजातियों का आन्दोलन असहयोग आन्दोलन के समय पुनः शुरू हो गया। 1922 के पश्चात जंगलों पर अपने अधिकारों के लिए मिदनापनुर के आदिवासियों ने अंग्रेजों के साथ–साथ भारतीय जमींदारों के खिलाफ भी आंदोलन छेड़ दिया। छोटा नागपुर में उराँव जनजाति के द्वारा जत्रा भगत के नेतृत्व में किया गया ताना भगत आन्दोलन अपनी विशेष अहिंसात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध है। 1914–1919 ई0 के मध्य उराँव जनजाति की एक शाखा ताना भगत ने कर न देने, बेगारी न करने, आदिवासियेां के मानव अधिकारों के लिए, मालगुजारी न देनेके खिलाफ अंग्रेजों, जमींदारों, मिशनरियों, मुस्लिमों साहूकारों के खिलाफ अहिंसात्मक पद्धति से सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया। ताना भगत आन्दोलन बहुआयामी आन्दोलन था। जत्रा भगत ने इसकी शुरूआत सामाजिक–धार्मिक सुधार के रूप में की थी। जत्रा भगत ने 1914 में पशु बलि, जीव हत्या, मांस भक्षण, शराब सेवन, अन्धविश्वास, भूत–प्रेत में विश्वास आदि दुर्गुणों को समाप्त करने के लिए आन्दोलन छेड़ा। जत्रा भगत ने सात्विक जीवन को संदेश देते हुए लेागेां से अहिंसा का पालन करने के लिए निवेदन किया और इसी पद्धति के अनुरूप क्षेत्र की अन्य समस्याओं के लिए

अहिंसात्मक विरोध की नीति अपनायी। जत्रा भगत की लोकप्रियता से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन के मूल चरित्र को न समझते हुए जत्रा को गिरफ्तार कर लिया। जेल से छूटने के पश्चात जत्रा की मृत्यु हो गयी। इससे आंदोलन कुछ समय के लिए हिंसक भी हो गया। ताना भगत महात्मा गांधी की अहिंसा नीति से प्रभावित थे। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन से स्वयं को जोड़ दिया। कांगेस के 1922 के गया अधिवेशन और नागपुर सत्याग्रह में बड़ी संख्या में ताना भगत लोगों ने सहभागिता की। 1913 से 1942 के दौरान ताना भगत लोगेां की जमीन वापस दिलाने के लिए आजाद भारत में ताना भगत रैय्यत एग्रिकल्चरल लैण्ड रिस्टोरेशन एक्ट पारित किया। वस्तुतः यह अधिनियम ताना भगत आंदोलन की व्यापकता और उनकी शहादत को नमन के लिए बनाया गया।

बोध प्रश्नः

3. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही एवं गलत के चिन्ह लगाएँ–

5. आदिवासी आन्दोलनों का प्रमुख कारण उनके स्वतंत्र जीवन में बाहरी लोगों का हस्तक्षेप था।

6. आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ उनके कल्याण के लिए होती थी।

7. आदिवासी आंदोलनों की प्रकृति मुख्यतः अहिंसक रही है।

8. आदिवासी आंदोलन उपनिवेशाी शासन को पूर्णतः समाप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे।

4. आदिवासी आन्दोलन के कारणों का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3.7 सारांश

आदिवासी आंदोलन के पीछे की प्रमुख वजह ब्रिटिश राज का उन क्षेत्रों में विस्तार और उनके गैर आदिवासी एजेंटो जमींदार, साहूकार, व्यापारी, अधिकारी, कर्मचारी आदि के शोषण और दमन से आदिवासियों की स्वतंत्रता और स्थानीय संसाधनों पर उनके नियंत्रण के समक्ष उपस्थित खतरा था।

आदिवासियों ने उन सभी बाहरी व्यक्तियों और तत्वों का विरोध किया जो उनके तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक संरचना को प्रतिकूलतः प्रभावित कर रहे थे। आदिवासी अपनी जमीनों के गैर आदिवासी लोगों के हाथों में जाने, अपने ही क्षेत्र में अपमानित होने, अपने लागों के शोषण और दमन को देखकर, जंगल और जमीन पर अपने परंपरागत अधिकारों को समाप्त होते देख और न्याय की पुकार न सुने जाने के कारण अत्यंत उग्र हो गये। आदिवासी संस्कृति मुख्य समाज की परिधि पर समतवादी लोकाचार और स्वतंत्रता पर आधारित थी। ईसाई मिशनरी और अन्य धर्म के कर्मकांडीकरण के दमन का शिकार होने से उनके अंदर बाहरी लोगों के प्रति घृणा का भाव जन्म लेने लगा। ब्रिटिश राज और बाहरी उत्पीड़कों ने आदिवासियों की शक्ति, स्वतंत्रता और संस्कृति की स्वायत्ता को समाप्त कर दिया। अंग्रेजी सरकार आदिवासी आन्दोलनों और विद्रोहों को कानून–व्यवस्था की समस्या मानकर इन्हें आदिम जंगली कहती थी जो सभ्यता का विरोध कर रहे थे। राष्ट्रवादियों ने इन आंदोलनों को आधुनिक राष्ट्रवाद के प्रागैतिहास के रूप में पेश किया क्योंकि स्वतंत्र होने की भावना आदिवासियों में अत्यंत प्रबल थी। आदिवासियों का आक्रोश अंग्रेजी सरकार और उनके कारिंदो को जड़ के साथ उखाड़ फेंकने वाले आंदोलन के रूप में हिंसक रूप में प्रस्फुटित हुआ। अधिकांश आंदोलन और विद्रोह असफल हुए क्योंकि उनका मुकाबला आधुनिक तकनीक और हथियार से लैस एक पूर्ण राज्य से था। ब्रिटिश सरकार ने अत्यंत निर्ममतापूर्वक जनसंहार के माध्यम से इन विद्रोहों का दमन किया। आदिवासियों की हत्या के साथ ही उनके घरों का जलाना, क्षेत्र को बर्बाद करना आम बात थी। इस अत्यधिक दमन से कई जनजातियाँ समाप्ति की कगार पर पहुँच गयी। मजबूरी में आदिवासियों को समर्पण करना पड़ा। कालांतर में आदिवासियों के हितों का संरक्षण करने के लिए 1874 में अनुसूचति जनपदका सृजन का कानून अंग्रेजी सरकार द्वारा लाया गया। इसके अतिरिक्त अलग–अलग आन्दोलन और विद्रोहों के प्श्चात उस क्षेत्र के

लिए विशेष कानून भी लाये गये। जैसे संथाल विद्रोह के पश्चात संथालों के लिए विशेष क्षेत्र के रूप में सथाल परगना का निर्माण किया गया।

3.8 शब्दावली

दिकू – आदिवासी समाज के लिए सभी गैर आदिवासी बाहरी लोग

उल्गुलान – महान हलचल

खूँटकट्टी – आदिवासी क्षेत्रों में खेती की पद्धति जिसमें कुछ वर्षों की खेती के बाद उस क्षेत्र को छोड़कर दूसरी जगह खेती की जाती थी

बेगार – जबर्दस्ती बिना भुगतान के करवाया गया श्रम

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1. सही 2. गलत 3. गलत 4. सही

2. भाग 3.4 देखिये

3.10 इस खंड के लिए उपयोगी सन्दर्भ एवं पुस्तकें –

1- आधुनिक भारत – सुमित सरकार

2- आधुनिक काल पर्यावरण, अर्थव्यवस्था, संस्कृति – सुमित सरकार

3- आधुनिक भारत का इतिहास – रामलखन शुक्ल

4- आधुनिक भारत का इतिहास – बी.एल.ग्रोवर

5- राज से स्वराज तक – रामचन्द्र प्रधान

6- भारत का मुक्ति संग्राम – अयोध्या सिंह

7- डायमेंसन्स ऑफ ट्राइबल मूवमेंट्स इन इंडिया ए स्टडी आफ उदयांचल इन असम वैली – एम सी पाल

8- ट्राइबल इण्डिया –एन0 हुसैन

9- सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया अ रिव्यू ऑफ लिटरेचर – घनश्याम शाह

इकाई चतुर्थ – महिला आंदोलन

इकाई रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारत में महिला आंदोलन के मुद्दे

4.4 महिला आंदोलन के कारण

4.5 महिला आंदोलन के विभिन्न चरण

4.6 महिला आंदोलन की प्रकृति

4.7 आधुनिक भारत में प्रमुख महिला आंदोलन

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.11 इस खण्ड के लिए उपयोगी पुस्तकें और सन्दर्भ

4.1 प्रस्तावना

महिलाओं की स्थिति विभिन्न कालखंडों में परिवर्तनशील रही है। भारतीय इतिहास में कालक्रम में उत्तरोत्तर स्त्रियों की स्थिति दिन ब दिन गिरती चली गयी। आधुनिक भारत की पूर्व संध्या पर महिला की स्थिति पराधीन और अशिक्षित होकर घर की चहारदीवारी में कैद होकर सार्वजनिक जीवन में अत्यंत सीमित भूमिका वाली हो गयी थी। आधुनिक भारत के पुनर्जागरण में सर्वप्रथम महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दों को ही प्रमुखता से उठाया गया। शुरूआत में जब पुरूषों ने सहानुभूतिपूर्वक महिला उद्धार से सम्बन्धित जो सुधार आन्दोलन चलाये, वो उनके जीवन से सम्बन्धित थे। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में महिलाओं की शिक्षा के लिए आन्दोलन चलाये गये ताकि उनको सशक्त किया जा सके। 20वीं सदी में महिलाओं का राजनीतिकरण दिखने

लगता है और स्वयं महिलाओं ने अपने संगठन बनाकर सामाजिक संरचना और समाज में अपनी प्रस्थिति को परिवर्तित करने के लिए आन्दोलनरत हो जाती है और अपनी स्थिति में परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बद्ध हो जाती हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि

- आधुनिक काल में महिला आंदोलनों की शुरूआत किन मुद्दों को लेकर हुई
- आधुनिक काल में महिला आंदोलनों की शुरूआत के कारण क्या रहें
- आधुनिक काल में महिला आंदोलनों की प्रकृति क्या रही
- महिला आंदोलन से सम्बन्धित प्रमुख संगठन और नेतृत्वकर्ता कौन थे?
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता किस स्तर तक रही?

4.3 भारत में महिला आंदोलन के मुद्दे

19वीं सदी की शुरूआत में भारत में प्रारम्भ होने वाले सामाजिक–धार्मिक सुधार का सर्वप्रथम केन्द्रबिन्दु महिलाओं को बनाया गया क्योंकि जेम्स मिल जैसे विचारकों ने तत्कालीन भारत की पतनशील अवस्था को स्त्रियों की पतनशील अवस्था से जोड़ दिया। जब भारतीय विचारकों ने भारत की पतनशील अवस्था का विश्लेषण कर उसमें सुधार करने का प्रयास किया तो उन्होंने स्त्री सुधार को ही प्राथमिकता दी। यहीं से भारत में महिला सुधार आंदोलनों का उदय होता है जिसके नेता पुरूष थे। तत्कालीन समय में महिला पूर्ण रूप से अपने भौतिक अस्तित्व के लिए पुरूष पर निर्भर थी क्योंकि उसको न तो सम्पत्ति में अधिकार मिलता था और न हीं उसको शिक्षा और रोजगार की सुविधा थी। ऐसी स्थिति में समस्त दैनिक आवश्यकताओं के लिए वह पूरी तरह निर्भर थी। इसके साथ ही स्त्री शुचिता पर अत्यधिक बल देने के कारण स्त्री पूरी तरह घर की चहारदीवारी में कैद हो गयी और

उसका सार्वजनिक जीवन समाप्त सा हो गया। बाहर ने निकलने की वजह से उसे न तो शिक्षा मिली और न ही रोजगार। ध्यातव्य है कि यह स्थिति समाज के सभी वर्गों में समान रूप से लागू नहीं थी। निम्न वर्ग की स्त्रियां परिवार के साथ व्यवसाय में प्रतिभाग करती थी परन्तु वह स्वतंत्र नहीं थी। भौतिक और वैचारिक निर्भरता समान रूप से सभी स्त्रियों पर लागू था। इस भौतिक और वैचारिक निर्भरता ने महिलाओं के सम्बन्ध में कई कुरीतियों और निषेधों का जन्म दिया। इन कुरातियों में सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह न होना, कन्या शिशु हत्या, बहुपत्नी विवाह आदि प्रमुख थी। इन शुरूआती मुद्दों के पश्चात स्त्री शिक्षा और सम्पत्ति में अधिकार को प्रमुखता से उठाया गया। 19वीं सदी के द्वितीय भाग में मुख्य जोर स्त्री शिक्षा पर रहा। अब महिलाएँ भी महिला आन्दोलनों में प्रतिभाग करने लगी थी। 20वीं सदी में महिला म ुद्दों में समानता के अधिकार के तहत मतदान का अधिकार, उम्मीदवार बनकर विधान सभाओं में भागीदारी जैसे राजनीतिक मुद्दे प्रभावी हो गये। अब महिलाओं ने स्वयं संगठन बनाकर स्वयं के अधिकारों, समानता और स्वतंत्रता के लिए आंदोलन करना प्रारम्भ कर दिया।

4.4 महिला आंदोलन के विभिन्न चरण

आधुनिक काल में महिलाओं की पराधीन स्थिति में परिवर्तन और सशक्तिकरण के लिए 19वीं सदी की शुरूआत में बाल विवाह, विधवा विवाह न होना, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों एवं अमानवीय प्रथाओं में सुधार के लिए महिला आंदोलनों के प्रथम चरण की शुरूआत होती हैं। इस चरण के मुद्दे स्त्रियों के जीवन की सुरक्षा और गरिमा से जुड़े हुए थे। इस चरण की शुरूआत पुरूष समाज सुधारकों द्वारा सुधार के दृष्टिकोण से की गयी थी इसलिए इसे सुधारवादी आंदोलन का चरण भी कहते हैं। महिला आंदोलन में द्वितीय चरण की शुरूआत 19वीं सदी के मध्य से होती है जिसका मुख्य ध्येय स्त्रियों की शिक्षा पर था। महिलाओं की स्थिति में सुधार के समर्थक यह मानते थे कि शिक्षा के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति में गुणात्मक सुधार किया जा सकता है क्योंकि इससे उन्हें रोजगार की प्राप्ति

भी होगी और उनकी वैचारिक निर्भरता भी समाप्त हो सकती है। इस चरण में अब पुरूषों के साथ महिलाएँ भी नेतृत्वकारी भूमिका में आ गयी थी। इस चरण में सावित्रीबाई फुले और पण्डिता रमाबाई का नाम महिला शिक्षा के लिए विशेष उल्लेखनीय है। आधुनिक भारत में महिला आंदोलन के तृतीय चरण जिसकी शुरूआत 20वीं सदी में हुई जब राजनीति में महिलाओं का प्रवेश होना प्रारम्भ हुआ। अब स्त्रियों का उत्थान समाज सुधारकों का ही मुद्दा नहीं रहा बल्कि यह वृहत्तर राजनीतिक संघर्ष का भाग बन गया। अब महिलाओं ने राजनीति में भागीदारी, मतदान आदि के लिए समानता और स्वतंत्रता के स्तर पर आंदोलन करना प्रारम्भ कर दिया। इस चरण में महिलाओं ने स्वयं अपने संगठन बनाकर अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया। इस चरण में मार्गरेट कजिन्स, सरोजिनी नायडू आदि का नाम उल्लेखनीय है। इस तृतीय चरण की एक खास विशेषता महिलओं द्वारा अपनी मुक्ति के मुद्दे को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ना भी था। स्वदेशी आन्दोलन हो या असहयोग, सविनय अवज्ञा, भारत छोड़ो या क्रान्तिकारी आंदोलन सभी में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता देखने को मिलती है। इस चरण में महिला आंदोलन का नेतृत्व यह मानने लगा था कि महिलाओं की सामाजिक समस्याओं का समाधान राजनीतिक उद्धार से ही संभव है।.

4.5 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं महिला आंदोलन

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन जिन उदारवादी विचारों के लिए अंग्रेजों से संघर्ष कर रहा था उन्हीं विचारों स्वतंत्रता, समानता, मूल अधिकर, राजनीतिक अधिकार आदि की प्राप्ति के लिए महिलाओं ने स्वयं को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया। तत्कालीन महिला नेता इस बात को भलीभांति समझती थी कि उनकी स्वतंत्रता और समानता सहित सामाजिक समस्याओं का समाधान राष्ट्र की स्वतंत्रता से ही संभव है। इसलिए महिलाओं ने आगे बढ़कर राष्ट्रीय आंदोलन में प्रतिभाग किया। भारतीय राष्ट्रवाद के संगठित अभिव्यक्ति कांग्रेस में 1889 से महिलाओं ने प्रतिभाग करना प्रारम्भ करना शुरू कर दिया था।

अगले ही वर्ष कादम्बिनी गांगुली ने कांग्रेस अधिवेशन को सम्बोधित कर महिलाओं के लिए समानता का मजबूत दावा प्रस्तुत किया। उल्लेखनीय है कि भारत में ही नहीं अपितु देश के बाहर चलने वाले और उग्र क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी मैडम भीकाजी कामा, सरला देवी, दुर्गा देवी, कल्पना दत्त,प्रीतिलता, लक्ष्मी सहगल आदि महिलाओं ने प्रतिभाग कर समानता के लिए मजबूत दावेदारी प्रस्तुत की। द्वितीय चरण के महिला आंदोलन में महिला शिक्षा पर बल देने से मध्यम वर्ग की महिलाओं ने सक्रिय रूप से सार्वजनिक जीवन में प्रतिभाग करना शुरू कर दिया था। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक संघर्ष और स्त्री–पुरूष समानता सम्बन्धी विचारों ने राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को अधिकाधिक भाग लेने के लिए प्रेरित किया। स्वदेशी आंदोलन से असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की प्रबल भागीदारी को देखते हुए राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने महिला आंदोलनों के मुद्दों का भी प्राथमिकता देना शुरू किया। 1931 के कांग्रेस के मौलिक अधिकार सम्बंधी प्रस्ताव में स्त्री–पुरूष समानता को एक उद्देश्य के रूप में स्थापित किया गया। उसके पहले मार्गरेट कजिन्स के नेतृत्व में महिलाओं के लिए मताधिकार की मांग करने के लिए वायसराय से एक महिला शिष्टमंडल भी मिल चुका था। 1919 के मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों में महिलाओं को मताधिकार दिया गया। मद्रास में डॉ मुथुलक्ष्मी रेड्डी के पहली महिला विधायिका बनने के साथ महिलाओं के विधानमण्डल सभासद बनने की शुरूआत हो गयी। राष्ट्रीय आंदोलन में प्रतिभाग करने से महिलाएँ समाज की कई रूढ़िगत और प्राचीन परंपराओं को तोड़ने में सफल रही।

4.6 19वीं सदी में महिला सुधार के आन्दोलन

अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने भारतीयों के बीच उदारवादी सिद्धांतों समानता, स्वतंत्रता, मानवीयता आदि मूल्यों को लोकप्रिय बनाया जिसने भारतीयों को अपने समाज का मूल्यांकन उपर्युक्त विचारों के आलोक में करने के लिए प्रेरित किया। दूसरी तरफ ईसाई मिशनरियों और पाश्चात्यवादी विचारकों के असभय और अमानवीय समाज होने के आरोपों का प्रत्युत्तर देने के क्रम में

भारतीय समाज में समाज सुधार की एक लहर उठ खड़ी जिसमें मुख्य मुद्दा स्त्री उद्धार और जाति प्रथा की बुराईयाँ थी। 19वीं सदी में भारतीय पुनर्जागरण की शुरूआत पुरूष सुधारकों द्वारा महिला सुधारों के लिए आन्दोलन के साथ हुई। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म समाज के माध्यम से सती प्रथा का ज्वलंत मुद्दा उठाया और 1829 में इसके खिलाफ कानून बनवाने में सफलता प्राप्त की। शुरूआती समाज सुधारकों ने समाज के अन्दर से सुधार करने का प्रयास किया। महिला सम्बन्धी कुरातियेां बाल विवाह, बहुविवाह, विधवा पनुर्विवाह न होना आदि को धार्मिक सुधार के माध्यम से समाप्त करने का प्रयास किया। साथ ही अंग्रेजी सरकार की रूचि और भारतीय समाज सुधारकों के प्रयास से महिलाओं के लिए कानून बनाकर स्थिति को सुधारने का प्रयास भी किया गया। समाज में स्त्री से सम्बन्धित कुरातियों की समाप्ति के लिए ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि संगठन एवं राजा राम मोहनराय, एम0जी0रानाडे, देवेन्द्र नाथ टैगोर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने प्रमुख भूमिका निभायी।

ब्रह्म समाज ने धर्म सुधार को महिला सुधारों के लिए महत्वपूर्ण माना क्योंकि अधिकांश कुरीतियों को धार्मिक मान्यता प्राप्त थी। केशव चन्द्र सेन के नेतृत्व में महिलाओ की शिक्षा को स्त्री सुधार का प्रमुख अस्त्र माना गया। ब्रह्म समाज के प्रयासों से 1872 में सिविल मैरिज एक्ट पास हुआ जिसका उद्देश्य अन्तर्जातीय विवाह, विवाह विच्छेद को मान्यता देने के साथ लड़कियों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष और लड़को के लिए 18 वर्ष निश्चित करना था।

पुनर्उत्थानवादी आन्दोलन के रूप में शुरू आर्य समाज ने स्त्रियों के लिए समान शिक्षा, बाल विवाह पर प्रतिबंध, बाल विधवा का पुनर्विवाह पर बल दिया। आर्य समाज लड़कियों के लिए अलग पाठशाला खोलने पर बल देता था। आर्य समाज के प्रयास से ही बहुत सारे आर्य कन्या पाठशालाओं की स्थापना हुई। विधवा पुनर्विवाह का विरोध, जाति के अन्दर विवाह, सहशिक्षा

का विरोध आदि ने आर्य समाज के महिला सुधार आन्दोलन के योगदान को सीमित कर दिया।

पश्चिमी भारत में स्थापित प्रार्थना समाज ने विधवा विवाह को बढ़ावा देने के लिए 1869 में बाम्बे विडोज रिफार्म एसोसिएशन की स्थापना की।। प्रार्थना समाज का प्रमुख जोर महिला शिक्षा पर था ताकि महिला को परिवार के अन्दर और सार्वजनिक रूप से सशक्त किया जा सके।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में समाज सुधारकों ने नारी शिक्षा को नारियों के साथ ही राष्ट्र के उत्थान और प्रगति के लिए आवश्यक माना और इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये। ब्रह्म समाज ने न केवल समाज में स्त्री शिक्षा के पक्ष में वातावरण बनाया बल्कि शुरूआती प्रयास भी किये। केशवचन्द्र सेन ने बालिकाओं के लिए विक्टोरिया इन्सटीट्युशन की स्थापना की। पं0 ईश्वर चन्द्र विद्यासागर नें स्त्री शिक्षा के लिए 1849 में स्थापित कलकत्ता में प्रथम बालिका विद्यालय के लिए सरकार को सहयोग दिया। अगले 10 वर्षों में विद्यासागर ने लगभग 40 बालिका विद्यालयों की स्थापना कर स्त्री शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किया। स्त्री शिक्षा के लिए ज्योतिबा फुले ने उल्लेखनीय कार्य किये। उन्होंने सर्वप्रथम अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को शिक्षित किया और कालान्तर में उनके सहयोग से बालिका विद्यालय की स्थापना की। ज्योतिबा फुले ने अपनी पत्नी को ही विद्यालयों की शिक्षा का भार सौंपा क्योंकि अस्पृश्यों के लिए कोई शिक्षक तैयार नहीं था। फुले तमाम पुरातनपंथियों के विरोध और अपमानों से विचलित हुए बिना अपना कार्य करते रहे। स्त्री शिक्षा के साथ साथ विधवाओं के लिए अनाथालय की स्थापना भी की जिसमें गर्भवती महिलाओं को भी प्रश्रय दिया जाता था। प्रमुख उदारवादी नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने सार्वभौमिक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा विधेयक एवं भारत सेवक समाज के माध्यम से स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में डी0के0 कर्वे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होनें स्वयं एक ब्राह्मण विधवा से विवाह किया। विधवाओं की स्थिति में सुधार के लिए 1896 में हिन्दू विधवा आश्रम की स्थापना की।

इस आश्रम में विधवाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रयास किया जाता था। 1916 में कर्वे ने महिला विश्वविद्यालय की स्थापना कर एक महान कार्य किया। मुस्लिम समाज में सैय्यद अहमद खाँ ने मुस्लिम स्त्रियों के उत्थान के लिए बाल विवाह और पर्दा प्रथा का विरोध करने के साथ स्त्री शिक्षा के प्रसार पर विशेष बल दिया।

4.7 प्रमुख महिला संगठन और उनके आन्दोलन

20वीं सदी की शुरूआत में भारत में सामाजिक आन्दोलनों में एक नवीन प्रवृत्ति देखने को मिलती है। 19वीं सदी में शुरू हुए समाज सुधार के आन्दोलनों की खास विशेषता थी कि इनमें लक्षित समुदाय या उत्पीड़ित व्यक्ति उस आन्दोलन में नेतृत्वकारी भूमिका में नहीं था। 20वीं सदी में सामाजिक आन्दोलनों का नेतृत्व उस समुदाय के हाथ में आ गया जो वर्षों से पीड़ा को झेल रहा था। विभिन्न जाति आन्दोलनों, किसान आन्दोलनों, श्रमिक आन्दालनों की तरह महिला आन्दोलनों में भी स्वयं महिलाओं ने सामने आकर अपने संगठन बनाने प्रारम्भ किये और अपने मुद्दों की वकालत स्वयं करने की शुरूआत की। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय तथ्य यह भी था कि अब संगठन क्षेत्रीय स्तर के न होकर अखिल भारतीय स्तर के बनने लगे थे।

इन महिला संगठनों में सर्वप्रथम जिस अखिल भारतीय महिला संगठन की स्थापना हुई उसका नाम भारतीय महिला एसोसिएशन था, जिसकी स्थापना 1917 में मद्रास में आयरिश महिला मार्गरेट कजिन्स, एनी बेसेण्ट, सरोजिनी नायडू,बेगम अम्मन बीबी, मालती पटवर्धन आदि के द्वारा की गयी। इस संगठन का उद्देश्य महिला की सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करना था। 1917 में ही एनी बेसेण्ट कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षा के पद पर चुनी जाती है। 1917 में मार्गरेट कजिन्स और सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं की एक कमेटी शेम्सफोर्ड कमेटी के समक्ष महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ, शिक्षा सुविधाएँ एवं महत्वपूर्ण महिला मताधिकार के लिए अपनी मांगों को प्रस्तुत किया। इसी के प्रभावस्वरूप 1919 के भारतीय शासन अधिनियम में महिलाओं को मताधिकार

दिया गया जो तात्कालिक रूप से महिला आंदोलनों की एक बड़ी सफलता थी।

महिला की स्थिति में सुधार के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ मार्गरेट कजिन्स ने महिलाओं की शिक्षा पर कार्य करने के लिए भारत की सभी महिलाओं को खुले रूप से पत्र लिखकर स्थानीय समितियाँ बनाने और वार्षिक सम्मेलन करने के लिए कहा। इस प्रकार चुनी हुई ये महिलाएँ पूना में अखिल भारतीय स्तर पर सम्मलेन कर सभी प्रस्तावों पर विचार–विमर्श कर आधिकारिक रूप से सुधार के लिए सम्मिलित प्रस्ताव पेश करे। 1926 में स्थानीय समितियों ने इस प्रकार के सम्मलेन किये और अन्ततः 1927 में महिला आंदोलन के इतिहास में एक नयी पारी की शुरूआत हुई। पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज में पहली अखिल भारतीय महिला परिषद बनाकर सम्मलेन किया गया। इसके पश्चात इस संगठन ने पीछे मुड़कर नहीं देखा और आज भी यह महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए प्रयासरत है। इस संगठन की स्थापना में राजकुमारी अमृतकौर, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सरोजनी नायडू, नलिनी सेनगुप्ता, अनुसुइसा बेन आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। जल्दी ही पूरे भारत में इसकी शाखाएँ खोली गयी। संगठन ने बाल विवाह को रोकने के लिए शारदा कानून के बनने में सड़क से विधानसभाओं तक हर जगह प्रयास किया। संगठन ने महिला शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए खुद के फण्ड से 1932 में लेडी इर्विन कॉलेज की स्थापना की। 1938 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने महिला सम्बंधी मुद्दों के लिए रोशनी पत्रिका का प्रकाशन करना भी प्रारम्भ किया।

महिला आंदोलनों में प्रमुख निभाने वाली महिलाओ में कमला देवी, सरोजनी नायडू, लज्जावन्ती,अनुसूया साराभाई, पंजाब की पार्वती देवी, विजयक्ष्मी पण्डित, मणिबेन, राजकुमारी अमृत कौर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने न केवल महिला सुधार के लिए विभिन्न महिला आंदोलनों का संगठन किया बल्कि स्वयं की सहभागिता को महिला आंदोलनों के साथ

राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय रूप से रखकर समाज में समानता, स्वतंत्रता, मूल अधिकार, मानवीय गरिमा के लिए प्रबल दावा प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्नः

1. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही एवं गलत के चिन्ह लगाएँ–

1. महिलाओं की अधीनता का मुख्य कारण उनकी आर्थिक परनिर्भरता है।

2. आधुनिक भारत में महिला उद्धार का आन्दोलन स्वयं महिलाओं द्वारा शुरू किया गया।

3. अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की की शुरूआत 1927 से हुई।

4. सिविल मैरिज एक्ट 1891 में पारित हुआ था।

2. 20वीं सदी में महिला आंदोलन का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.8 सारांश

महिला की स्थिति में सुधार के लिए आन्दोलन 19वीं सदी में पुरूषों के द्वारा विविध सामाजिक सुधार आन्दोलनों के अन्तर्गत किये गये। प्रारम्भ में महिला सुधार के मुद्दे मुख्यतः उनके जीवन की सुरक्षा से सम्बन्धित थे। कालान्तर में महिला शिक्षा और उनके मूलभूत अधिकार सुधार आन्दोलनों के मुख्य विषय हो गये। 20वीं सदी में महिला आन्दोलनों का नेतृत्व स्वयं महिलाओं ने अपने संगठनों के माध्यस से किया और महिला सुधार को राष्ट्रीय आंदोलन और अन्य राजनीतिक आन्दोलनों से जोड़ने में सफल रही। राष्ट्रीय आन्दोलन में उदारवादी आंदोलना हो या गरमपंथी, महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन हो या क्रान्तिकारी सशस्त्र आन्दोलन, यहाँ तक कि वामपंथी आंदोलन में भी महिलाओं ने सक्रिय सहभागिता कर समाज में समानता का दावा प्रस्तुत किया।

4.9 शब्दावली

भारतीय पुनर्जागरण – 19वीं सदी में शुरू भारत में सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन

राजीनतिक अधिकार – मत देने और उम्मीदवार बनने का अधिकार सहित अन्य नागरिक अधिकार

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सही 2.गलत 3. सही 4. गलत

2. भाग 4.7 देखिये

4.11 इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें –

भारतीय महिला आंदोलन कल आज और कल – दीप्ति प्रिया महरोत्रा

सोशल मूवमेंट इन इण्डिया अ रिव्यू ऑफ लिटरेचर – घनश्याम शाह

आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास – अमरेन्द्र प्रताप सिंह एवं शैलेन्द्र पंथारी

http://aiwc.org.in/history.html

वीमेंस डेवलपमेंट दी इण्डियन एक्सपीरियेंस – मीरा सेठ

वीमेंस मूवमेंट इन इण्डिया – डी. गैब्रिएल

इकाई पंचम – सामाजिक न्याय एवं प्रतिनिधित्व

इकाई रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 सामाजिक न्याय की अवधारणा

5.4 भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा

5.5 सामाजिक न्याय के सिद्धांत

5.6 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय

5.7 सामाजिक न्याय एवं प्रतिनिधित्व

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.11 इस खण्ड के लिए उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही पदसोपानिक रूप से विभाजित समाज रहा है। इस इस समाज में असानता के आधार पर शिक्षा, सम्पत्ति, धर्म, राजनीति से सम्बन्धित अत्यंत कठोर और निर्मम विषमताएँ विद्यमान रही है। भेदभाव और असमानता का सर्वाधिक शिकार समाज की निम्न जातियों का होना पड़ा जिन्हें जीवन के सभी क्षेत्रों में जन्म से मरण तक निर्योग्याताओं और निषेधों का सामना करना पड़ा। जन्म आधारित जाति व्यवस्था में व्यक्ति की जाति से उसका व्यवसाय, कर्म, भविष्य सब कुछ निर्धारित हो जाता था। निम्न जाति में जन्म लेने वाला सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय आदि किसी भी क्षेत्र में स्वेच्छा से चयन नही ंकर सकता था। उसके उपर आरोपित जाति की निर्योग्यताए उसकी अन्य सभी महान और महत्वपूर्ण योग्यताओं के समक्ष सर्वोपरि होती थी। भारतीय समाज में निम्न जातियों के साथ ही महिलाओं को भी उसी असमान और शोषकारी व्यवस्था के अन्तर्गत

लम्बे समय तक लिंग आधारित भेदभाव झेलना पड़ा है। इस असमान और भेदभाव परक भारतीय समाज के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय के लिए कई सामाजिक आन्दोलन हुए जिनका उद्देश्य भेदभाव रहित ऐसे समाज की स्थापना करना था जिसमें निम्न जातियों के व्यक्तियों और महिलाओं को भी जीवन के समस्त क्षेत्रों में समानता और स्वतंत्रता हासिल हो।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि–

- सामाजिक न्याय शब्द का क्या अभिप्राय है
- सामाजिक न्याय की विभिन्न अवधारणाएँ क्या है
- सामाजिक न्याय की प्राप्ति में प्रतिनिधित्व किस प्रकार प्रमुख भूमिका निभाता है

5.3 सामाजिक न्याय का अभिप्राय

सामाजिक न्याय अपने अन्दर व्यापक अर्थों को समेटे हुए है। यह दो शब्दों सामाजिक और न्याय से मिलकर बना हुआ है। अतः पहले हम न्याय शब्द के निहितार्थ को समझने का प्रयास करते हैं। न्याय को व्यावहारिक रूप से समझ पाना आसान है परन्तु उसकी परिभाषा दे पाना कठिन कार्य है। मानव सभ्यता अपने शुरूआती समय से ही न्याय की अवधारणा को समझने का प्रयास करती रही है। चीनी दार्शनिक कन्फ्यूसियस के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि वह सही लोगों को पुरस्कृत करे और गलत लोगों को दण्ड देकर न्याय की व्यवस्था को कायम रखे। भारतीय संस्कृति में राजा द्वारा धर्म आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना ही न्याय था। यूनानी विचारक सुकरात के अनुसार आपसी समझौते के निर्मित कानून के द्वारा किया गया कार्य ही न्यायोचित होता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका उचित भाग देना न्याय से जुड़ा हुआ है। अरस्तु अपने वितरित न्याय के सिद्धांत के अन्तर्गत कहते हैं कि राज्य के द्वारा सभी नागरिकों को समान रूप से वस्तु, सेवा और सम्मान वितरित किए जाने चाहिए। सामाजिक न्याय समाज के सभी लोगों को समानता के स्तर से सभी

व्यक्तियों को गरिमा के साथ अपना विकास करने का भेदभाव रहित अवसर प्रदान करने से सम्बन्धित है।

सामाजिक न्याय की अवधारणा का विकास 19वीं सदी में यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति और अन्य नागरिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में हुआ। प्रारम्भिक समय में सामाजिक न्याय मुख्यतः आर्थिक आधारों पर ही केन्द्रित था क्योंकि उस समय सामाजिक न्याय का अर्थ पूँजीवादी समाज में गरीबों और अमीरेां के बीच बनी खाई को पाटने पर केन्द्रित था। इसलिए शुरूआती सामाजिक न्याय का मुख्य ध्येय सम्पत्ति और पूँजी के वितरण का था। 20वीं सदी में सामाजिक न्याय के आयाम में जाति, धर्म, भाषा, लिंग आदि शामिल हो गये। कालांतर में सामाजिक न्याय का ध्येय एक ऐसे समतावादी समाज के निर्माण का हो गया जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असमानता और किसी भी आधार जाति, धर्म, लिंग, भाषा, क्षेत्र, धन आदि पर आधारित भेदभाव की समाप्ति की बात करता है। सामाजिक न्याय समाज और राज्य के भीतर सभी मानवों के बीच प्रत्येक वस्तु और सेवा के समान वितरण से सम्बन्धित है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य समाज के सभी व्यक्तियों को सभी मामलों में बिना किसी भेदभाव के समान अवसर और समान अधिकार देकर एक न्यायसंगत और निष्पक्ष सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना होता है।

5.4 भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा

भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक न्याय का अभिप्राय यूरोपीय देशों से अलग है। यूरोपीय देशों का मुख्य ध्यान आर्थिक असमानता को समाप्त करने पर रहा है जबकि भारतीय समाज की पदसोपाानिक व्यवस्था सामाजिक न्याय चाहने वालों को दूसरे महत्वपूर्ण मुद्दे जाति और लिंग पर ध्यान देने की वकालत करती है। भारतीय समाज में असमानता और भेदभाव का मूल आधार जाति और लिंग आधारित रहा है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज को एक असमान अधिकारों वाली, उच्च और निम्न में बंटे, वंचित निम्न जातियों के मानवाधिकारों से वंचित और यहाँ तक कि जीवन के आधारभूत सुविधाओं

पानी, शिक्षा, दैनिक सेवाओं से वंचित समाज बनाती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय का अर्थ इन्हीं वंचित निम्न जातियों के लोगों और महिलाओं के लिए सभी लाभ, अधिकार, सुविधाएँ, सेवाएँ देने से सम्बन्धित है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निम्न जातियों में सामाजिक अन्याय का मूल कारण अम्बेडकर जाति व्यवस्था को मानते थे। प्रचलित सामाजिक व्यवस्था में समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्थाओं में निम्न जातियों की भागीदारी प्रतिबंधित करने का उपकरण अस्पृश्यता था। इसलिए अम्बेडकर निम्न जातियों के लिए सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए अस्पृश्यता के उन्मूलन पर बल देते थे। भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक अन्याय को महिलाओं की निम्न स्थिति के रूप में भी देखा जा सकता है। अम्बेडकर ने अपने अध्ययन में पाया कि हिंदू समाज में महिलाओं की स्थिति एक उपकरण की तरह और उपभोग करने वाली वस्तु के रूप में था। महिला परिवार में बच्चों को जन्म देने, उनका पालन–पोषण करने, बहन, माता, पत्नी और अन्य सम्बन्धों की जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए ही बनी थी। आर्थिक सुरक्षा न होने से उन्हें गरीबी, निरक्षता, असमानता आदि भेदभावों को सहन करना पड़ता है क्योंकि वह पूरी तहर पुरूष पर निर्भर थी। संसाधनों पर नियंत्रण न होने, शिक्षित न होने, निर्णय प्रक्रिया में सहभागी न होने के कारण महिलाओं की स्थिति पुरूषों के शोषण और श्रम के अनुचित विभाजन से अत्यंत निम्न स्तर की हो गयी है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने अपने अध्ययन में भारतीय समाज और उसकी सामाजिक अन्याय की समस्याओं के लिए लिंग और जाति आधारित समानता को समाप्त कर सभी के बीच समानता और एकता, स्त्री–पुरूष की समानता, सभी से मानवीय व्यवहार, सभी के मानवाधिकारों और गरिमा की सुरक्षा, जाति–लिंग भेद की समाप्ति, निम्न वर्गों के लिए गरिमापूर्ण जीवन, सभी के लिए भेदभाव मुक्त शिक्षा और संपदा पर अधिकार की बात करते हैं।

5.5 सामाजिक न्याय के सिद्धांत

सामाजिक न्याय सर्वप्रथम निष्पक्षता और समानता से उपजता है। सामाजिक न्याय को प्राप्त करने का सर्वप्रथम सिद्धांत समानता है। सभी विचारक इस बात पर एकमत है कि समाज में सभी व्यक्तियों के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए। जैसे मानव होने के नाते जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, संपत्ति का अधिकार आदि नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक अधिकार सभी को प्राप्य है। यह अधिकार देते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि समाज के अन्दर जाति, लिंग, वर्ग, क्षेत्र आदि किसी भी आधार पर भेदभाव अनुपस्थित हो अन्यथा सामाजिक अन्याय उपस्थित हो जायेगा। यदि दो भिन्न जाति के व्यक्तियों को समाज में समान रूप से जीवन जीने का अधिकार और अवसर नहीं मिल रहा तो यह सामाजिक अन्याय की स्थिति होगी। यदि किसी महिला को समान काम के लिए समान वेतन नहीं मिलता तो इसे भी सामाजिक अन्याय कहा जाएगा। अतः समान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार और समान अवसर देने का सिद्धांत सामाजिक न्याय के लिए मूलभूत है। प्रसिद्ध विचारक जान राल्स न्याय को निष्पक्षता से ही सुनिश्चित करने की बात करते हैं। राल्स आगे कहते हैं कि सामाजिक न्याय केवल निष्पक्ष समानता से ही सुनिश्चित नहीं हो सकता बल्कि यह वितरणात्मक न्याय से भी पूर्णतः सम्बन्धित है। सामाजिक न्याय संसाधनों, अवसरों, गरिमा के पुनर्वितरण पर जोर देता है ताकि उन लोगों को भी न्यूनतम आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हो जाए जो सदियों से वंचना और दमन के शिकार है, जिन्हें समाज ने किसी भी क्षेत्र में वह समानता और अवसर की समता नहीं दी है जो उनके जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं और उनके विकास के लिए मूलभूत हो। भारतीय समाज में निम्न जातियों और अस्पृश्यों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रयास से पुनर्वितरण करने की आवश्यकता है क्योंकि केवल समान व्यवहार ही उनके लिए सामाजिक न्याय का सुनिश्चयन नही ंकर सकता। विशेष जरूरतों और परिस्थितियों का ध्यान रखकर समाज के वंचित

और कमजोर तबके के लिए विशेष व्यवहार करना या उनके लिए शिक्षा और नौकरियों में प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण की व्यवस्था करना समानता के सिद्धांत को खण्डित नही करता बल्कि यह सामाजिक न्याय के लिए समान लोगों के साथ समान व्यवहार के सिद्धांत का विस्तार ही है। भारतीय संदर्भ में अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्गों, महिलाओं, दिव्यांगों आदि को विशेष व्यवहार के योग्य समझा जाता है। न्यूनतम मूलभूत सुविधाओं पानी, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के वंचित ऐसे हाशिए पर पड़े लोगों के साथ समान व्यवहार के नाम पर उच्च वर्गों और सुविधासम्पन्न जैसे लोगों के समान व्यवहार अन्यायी समाज को जन्म देगा। जॉन राल्स के शब्दो में सामाजिक न्याय है – " स्वतंत्रता और अवसर, संपदा और आय और गरिमा का आधार समान रूप से बराबर वितरित किया जाना जब तक कि उपर्युक्त में से किसी के भी असमान वितरण से लक्षित समूह को विशेष लाभ नहीं होता हो। " भारतीय समाज के संदर्भ में एक बड़ी आबादी का इन मूलभूत सुविधाओं तक पहँ का अभाव और उनके साथ जीवन के सभी क्षेत्रों में असमानता और भेदभाव का मूल कारण कई सदियों से प्रचलित जाति व्यवस्था है। इसलिए भारत में इन वंचित तबके को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए शिक्षा और नौकरियों में आरक्षण के जरिए प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है।

5.6 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय

भारतीय इतिहास में सामाजिक न्याय के पुरोधा के रूप में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का नाम अग्रणी है। अम्बेडकर का लक्ष्य जाति विहीन आदर्श समाज बनाना था। अम्बेडकर के अनुसार भारतीय समाज में असमानता और भेदभाव का मूल कारण जाति व्यवस्था रही है। अम्बेडकर इस आदर्श समाज के निर्माण में सामाजिक न्याय को एक साधन मानते थे। अम्बेडकर का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के सिद्धांत पर आधारित था। अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की संकल्पना में स्वतंत्रता की स्थापना करने के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता एवं सर्वसुलभ शिक्षा का होना

अनिवार्य था। अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की संकल्पना में दूसरा महत्वपूर्ण घटक समानता है। अम्बेडकर का मानना है कि इसके बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो जाता है और उसके पतन होने लगता है। भाईचारे को अम्बेडकर समाज में अव्यवस्था को रोकने वाला मानते है। उनके अनुसार बिना भाईचारे के सामाजिक न्याय की संकल्पना पूर्ण नहीं हो सकती। अम्बेडकर सामाजिक न्याय के लिए राजनीतिक लोकतंत्र को पूर्ण नहीं मानते। उनके अनुसार बिना सामाजिक लोकतंत्र के राजनीतिक लोकतंत्र को भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक लोकतंत्र जीवन जीने का तरीका है जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा मूलभूत सिद्धांत है।

अम्बेडकर के सामाजिक न्याय में प्रतिनिधित्व भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अम्बेडकर के अनुसार राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार और कार्यालय का अधिकार नागरिक बनने के लिए अनिवार्य है। सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व की चर्चा आगे की जायेगी।

5.7 सामाजिक न्याय एवं प्रतिनिधित्व

एक आदर्श समाज में सभी नागरिक समान होते है। ऐसे समाज में सभी को समान नागरिक अधिकार और अवसर की समता सम्मान के साथ उपलब्ध होती है जिससे व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने व्यक्तित्व का विकास करता है और अपने प्राप्य को प्राप्त करता है। इस अवस्था में समाज के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों आर्थिक और राजनीतिक में सभी समुदायों का यथोचित प्रतिनिधित्व कम या ज्यादा अनुपात में ही सही पर रहता है। परन्तु यदि किसी समुदाय को सदियों तक शिक्षा और अवसर की समता से वंचित रखा जाए, उसकी मूलभूत सुविधाएँ भी पूरी न हो रही हो और उसका जीवन और सम्मान सुरक्षित न हो तो ऐसे समुदाय के लिए सामान्य परिस्थितियों में प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सकना लगभग असंभव होता है। सामाजिक न्याय की भारतीय परिस्थितियों को अम्बेडकर ने समझते हुए प्रतिनिधित्व का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

अस्पृश्यों के लिए सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए अम्बेडकर ने राजनीतिक जागरूकता पर विशेष बल दिया। एक आदर्श समाज में सभी व्यक्ति जाति धर्म के भेद से परे नागरिक होते है। अम्बेडकर नागरिक के अधिकारों के बारे में लिखते हुए कहते है कि उसे स्वतंत्रता, समानता, संपत्ति का अधिकार समेत मूलभूत अधिकारों के साथ देश के शासन में प्रतिनिधित्व का अधिकार और कार्यालय का अधिकार प्राप्त होता है। अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्य नागरिक ही नहीं होता इसलिए उसे कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं होते। अम्बेडकर ने तर्क दिया कि यदि अछूतों को प्रतिनिधित्व पाने का अधिकार नहीं दिया जायेगा तो वो उच्च जातियें की दया पर निर्भर होंगे जिससे उनके लिए कोई निर्णय नहीं लेगा। इससे अच्छा है कि अस्पृश्यों के प्रतिनिधि होने चाहिए जो उनके लिए वकालत करे और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करे। अम्बेडकर के अनुसार अछूतों के लिए अलग निर्वाचन की व्यवस्था कर उनके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया जा सकता है। ऐसा कर के ही राजनीतिक सत्ता पर उच्च वर्गों के एकाधिकार को समाप्त कर सामाजिक न्याय की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। अम्बेडकर ने ब्रिटिश शासन के दौरान अधिकांश मंचों से अछूतों के लिए प्रतिनिधित्व की मांग की। सबसे पहले साउथबरों कमेटी के समक्ष अम्बेडकर ने अछूतों के लिए सबसे प्रमुख राजनीतिक और प्रशासनिक प्रतिनिधत्व की वकालत की। शोषित और वंचित वर्गों की सुरक्षा के लिए अम्बेडकर ने साइमन आयोग के समक्ष बाम्बे प्रेसीडेंसी में पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग की। अम्बेडकर का मानना था कि प्रतिनिधित्व उस समुदाय की प्रस्थिति और जनसंख्या पर आधारित होना चाहिए। सिविल प्रशासन सहित सेना और पुलिस में वंचितों ओर पिछड़ वर्गों की भर्ती पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त करने और भर्ती के लिए अधिकार देने की अम्बेडकर ने पुरजोर वकालत की। गोलमेज सम्मेलन में भी शोषित वर्गों के हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अम्बेडकर ने पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग की। अम्बेडकर ने वंचित वर्गों की आबादी और आवश्यकता के आधार पर देश के सभी लोकतांत्रिक संस्थाओं समेत राज्य विधानसभा और

केन्द्रीय विधानसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व और केन्द्र एवं राज्य की सेवाओं में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए नौकरियों में आरक्षण की मांग की।

प्रतिनिधित्व के माध्यम से सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने का प्रयास इस विचार पर आधारित है कि इतने लम्बे समय तक शासन एवं प्रशासन में वंचित वर्गों की भागीदारी उनके मनोबल को बढ़ाकर अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से अपने अधिकारों की प्राप्ति है। इसी क्रम में शिक्षा, नौकरियों, राजनीति में आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना राज्य द्वारा सकारात्मक भेदभाव है जो राल्स के वितरणात्मक न्याय की तज र्पर है जिसमें विशेष वर्गों के लिए विशेष प्रयास की जरूरत होती है ताकि वंचित वर्ग मुख्य धारा के लोगो के साथ समान स्तर पर आ सके।

बोध प्रश्नः

3. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही एवं गलत के चिन्ह लगाएँ–

1. सामाजिक न्याय का मूल सिद्धांत समानता है।
2. विशेष परिस्थितियों में सामाजिक न्याय के लिए भेदभाव वैध है।
3. भारतीय सामाजिक न्याय में मुख्य अवरोध जाति व्यवस्था रही है।
4. राल्स का सामाजिक न्याय वितरणात्मक न्याय पर आधारित है।

4. भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 सारांश

सामाजिक न्याय का आशय समाज में सभी प्रकार के भेदभाओं का उन्मूलन कर निष्पक्षता और समानता के साथ गरिमापूर्ण तरीके से सभी नागरिकों को एक समान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संसाधनों और सेवाओं का न्यायपूर्ण वितरण है। सामाजिक न्याय सभी के लिए एकसमान अवसर की कल्पना करता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राप्य को प्राप्त कर सके और अपना इच्छित विकास कर सके। भारतीय सन्दर्भों में सामाजिक न्याय में सबसे बड़ी बाधा जाति व्यवस्था रही है। जाति के साथ लिंग आधारित भेदभाव भारतीय समाज को अन्याय आधारित समाज बनाते है। अम्बेडकर ने

भारतीय सन्दर्भों में सामाजिक न्याय का अध्ययन कर भारत में सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व को मूल सिद्धांत के रूप में स्थापित किया। इसके साथ ही अम्बेडकर ने शिक्षा में सभी की पहुँच को सामाजिक न्याय के लिए अनिवार्य बताया। सामाजिक न्याय के लिए अम्बेडकर का मुख्य ध्यान प्रतिनिधित्व पर भी रहा। उन्होंने राजनीतिक के साथ ही सेवाओं में आरक्षण के माध्यम से वंचति वर्गों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व की वकालत की।

5.9 शब्दावली

जाति व्यवस्था – सामजिक व्यवस्था जिसमें जन्म आधारित जाति के आधार पर अधिकार और निर्योग्यताएँ निर्धारित होती है

वितरणात्मक न्याय – सामाजिक प्राथमिक वस्तुओं स्वतंत्रता, समानता, अवसर, सपंदा, आय का सम्मान के साथ भेदभावरहित वितरण

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1. सही 2. सही 3. सही 4. सही
2. भाग 5.4 देखिये

5.11 इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें –

आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास – शैलेन्द्र पांथरी एवं अमरेन्द्र प्रताप सिंह
अम्बेडकर राइटिंग एण्ड स्पीचेज खण्ड 1
अम्बेडकर राइटिंग एण्ड स्पीचेज खण्ड 2
अम्बेडकर राइटिंग एण्ड स्पीचेज खण्ड 3
अम्बेडकर राइटिंग एण्ड स्पीचेज खण्ड 5
सोशल जस्टिस इन इण्डिया – बी. आर. पुरोहित एवं संदीप जोशी
सोशल जस्टिस अम्बेडकर विजन – सुषमा यादव

Note

Note

Note

Note

Note